

कुम्भकुम्भाचार्य प्रणीत

णियमसार

मज्झिमक ११४ खण्डोक्त

हज्जधम्म वेम



श्री कुम्भकुम्भ भारती प्रकाशन

३१५० ॥ साधारण बुनियाद की विद्यालय की

संस्कृत-१००० शब्द-संग्रह

आचार्य महाराज श्री. मन्मथराय पटवर्धन जी महाराज

सिद्धिदाता । अन्तर्गत क.प्र.क.प्र.

[illegible]

我：「是。」

金地時 6 萬 4 千 9 百 7 十 3 畝

१७७७-७८ १७७८-७९

THE UNIVERSITY OF CHICAGO

[illegible]

* 舊金山時報，一九四九年一月二十日。

$\frac{1}{2} \left(\frac{1}{2} \right) = \frac{1}{4}$

2000 年 12 月 1 日 星期一

總編輯 吳雪 吳雪

[illegible]

सूचना को संसाधित (FAMS प्राप्त)

ॐ : A. विश्वकर्मा पुत्रः राजा महाराजः

1000

प्रस्तावना

आचार्य बुद्धकुन्द भगवान महावीर की परम्परा के सर्वाधिक आदर्शपूर्ण और विशुद्ध विद्वान् मुनि थे। वे अध्यत्म के वेत्ता। अध्यत्म के रहस्य तथा अध्यत्म में निमग्न महसूस थे। वे मुनियों के भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट आचार का—उनकी भाषा और व्यवहार अनुसार निर्दोष गति में चलने करने थे और मुनि धर्म की शिक्षा-आचार में बचाने का पुण्य प्रयत्न करने थे। इसके लिए उनके और तो मुनियों के लिए बिहिन माने का समर्थ गति में उन्होंने प्रतीपादन किया था दूसरे और उन्होंने मुनि धर्म के नाम पर प्रकीर्ण शिक्षा-आचार का समर्थ विरोध किया। उनका विश्वास था कि भगवान महावीर ने जिस मुनि धर्म का प्रतीपादन किया था और परवर्ती आचार्यों ने जिसका निर्वीर और प्रचार किया वह सब कुछ अन्तः-बाह्य उपपत्तियों में सुकल और शान्तराम दोनों का धर्म है। वह सार्वभौम परिस्थितियों में अवसर और परिवर्तन-अवस्थितियों का धर्म नहीं है। उन्हें मार्गदर्शक महावीर की दिव्य शक्ति में निश्चित तथा—सकलधर्मों द्वारा द्वादशान कथ में बुद्धिकल शास्त्र-ज्ञान परम्परागत कथ में बहुभाषा में अपने मूल कथ में उपलब्ध हुआ था और उसी का उन्होंने सकारण कथ में शास्त्र निबद्ध कर दिया। यही कारण है कि उनके द्वारा रचित सम्पूर्ण बाह्यमय अग्रगण्य प्राध्यात्मिक माना जाता है, समस्त धर्म में भगवान महावीर और उनके मुख्य सहायक गौतम स्वामी के परवान आचार्यों में एक मात्र उन्हें ही समस्त कथ में स्मरण किया जाता है, परवर्ती अनेक आचार्य—चाहे वह किसी मूल, मन्त्र या मन्त्र का हो अपने आपकी कुक्कुटान्धव्यी मानने में गौरव कर अनुभव करता है।

सम्पूर्ण परिस्थितियों

बुद्धकुन्द के व्यक्तिगत और कुलित्व का अनुमान करने में उनके उदय-काल की धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों की जानकारी

विशेष सहायक हो सकती है। यह सिद्धान्त-आगमकाल था। इसी काल के आसपास निर्यन्त्र दिगम्बर सध में से सचेल सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ था। यह सम्प्रदाय भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित श्रुत के नाम पर एक साधु-सम्मेलन मे स्मृति के आधार पर श्रुति-अश्रुति श्रुत वाक्यो की वाचना करके श्रुत के जीर्णोद्धार मे लगा हुआ था। सचेल परम्परा मे यह प्रथम वाचना कहलाती है। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि सध-भेद या श्रुत-भेद का मुख्य कारण कुछ जैन साधुओं का वस्त्र व्यामोह था। महावीर स्वयं निर्यन्त्र दिगम्बर थे और उनका धर्म अचेल धर्म था, यह श्वेताम्बर परम्परा भी मानती है। महावीर के अचेल धर्म की संगति आप-वादिक वस्त्र को औत्सर्गिक मानकर नही बैठायी जा सकती। जब किसी कारण से मुनि-मार्ग मे आपवादिक वस्त्र घुस गया और कुछ सुख शील साधु उसके अभ्यस्त हो गये तो फिर उसका निकालना कठिन हो गया। इस एक शिथिलाचार के कारण ही श्वेताम्बर परम्परा मे वस्त्र के साथ ही साथ उपधियो की सख्या चौदह तक हो गई। इससे भी बडी विडम्बना यह हुई कि इस शिथिलाचार को सम्मत बनाने के लिए प्राचीन द्वादशाग के नाम पर नवीन शास्त्रों की रचना की गई और उन्हें मूल द्वादशाग श्रुत घोषित किया गया।

इस सम्बन्ध मे सुप्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान पंडित बेचरदास जी दोशी ने अपनी 'जैन साहित्य मे विकार' पुस्तक मे ठीक ही लिखा है कि 'किसी बंध ने सग्रहणी के रोगी को दवा के रूप मे अफीम सेवन करने की सलाह दी थी, किन्तु रोग दूर होने पर भी जैसे उसे अफीम की लत पड जाती है और वह उसे नही छोडना चाहता है, वैसी ही दशा इस आपवादिक वस्त्र की हुई।'।

भगवान महावीर की मूल अचेल परम्परा अपने मूल रूप में स्थिर रही। अनेक कठिनाइयों के बावजूद इसने अपने मूल रूप को सुरक्षित रखा। यद्यपि इस काल में समस्त द्वादशाग का वेत्ता कोई मुनि विद्यमान नही था, किन्तु ऐसे मुनि अवश्य थे, जिन्हें द्वादशाग का एक देश स्मरण था। इन महर्षियों ने द्वादशाग के उस एक देश को—जिसके सम्बन्ध में उन्हें असंदिग्ध विश्वास था कि यह गुरु-परम्परा से अपने मूल रूप में सुरक्षित चला आ रहा है—शास्त्र के

रूप में लिपिबद्ध कर दिया। इन महर्षियों में 'मुख्य थे—धरसेन और उनके शिष्य भूतबलि एवं पुष्पदन्त और गुणधर तथा कुन्दकुन्द। घबला और जयघबला के उल्लेखानुसार धरसेनाचार्य को सभी अंगों और पूर्वों के एक देश का ज्ञान आचार्य-परम्परा से प्राप्त हुआ था। नन्दिसंघ की प्राकृत पट्टावली के अनुसार धरसेनाचार्य एक अंग के धारो थे। उन्होंने यह ज्ञान भूतबलि और पुष्पदन्त नामक दो मुनियों को दिया था। उन्होंने गुरु-प्रसाद से प्राप्त इस ज्ञान को (दृष्टिवाद अन्तर्गत द्वितीय अग्रायणी पूर्व को) षट्खण्डागम नामक शास्त्र के रूप में लिपिबद्ध किया। 'बृहत् टिप्पणिका' की सूची के अनुसार स्वयं धरमेन ने 'जोणि पाहुड' नामक शास्त्र की रचना की थी। गुणधराचार्य ने ज्ञानप्रवाद नामक पाचवे पूर्व की दशम वस्तु अधिकार के अन्तर्गत तीसरे पेज दोस पाहुड से कसाय पाहुड की रचना की। कुन्दकुन्द ने प्रायः अपने सभी ग्रन्थों की रचना मूल द्वादशाङ्ग के तत्सम्बन्धी स्थलों के आधार पर की है। यथा समयसार की रचना ज्ञान प्रवाद के दशम वस्तु अधिकार के समय पाहुड के आधार पर हुई है। मूलाचार का आधार आचाराङ्ग नामक प्रथम अङ्ग है।

कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थों को प्रामाणिकता बताने के लिए अन्त और बाह्य दो प्रकार के आधारों की सूचना दी है। प्रथम—उन्होंने मगलाचरण में ही यह उल्लेख कर दिया है कि केवली और श्रुत केवलियों ने जो कहा है, मैं वही कहूँगा। अर्थात् मैं केवली, श्रुत-केवलियों द्वारा प्ररूपित का वक्ता मात्र हूँ, कर्त्ता नहीं। यह उनके ग्रन्थों का अन्त आधार है। द्वितीय आधार बाह्य है। समयसार में कहा है—'त एयत्तविहत्तं दाएह अप्पणो सविहवेण'। यह स्ववैभव केवल आत्मानुभव ही नहीं है क्योंकि आत्मानुभव में चूक नहीं होती। यह स्ववैभव शास्त्रों का वह ज्ञान और तत्सम्बन्धी स्मरण और धारणा शक्ति है, जो ज्ञान श्रुतकेवलियों से गुरु-परम्परा द्वारा मूल रूप में उन्हें प्राप्त हुआ।

हमारे उपर्युक्त निवेदन का प्रयोजन यह है कि इन आचार्यों के पूर्व ही निर्ग्रन्थ वीतराग जैन सघ विभक्त हो गया था और महावीर द्वारा प्ररूपित जैन सिद्धान्त सम्मत अचेल परम्परा के प्रति विद्रोह करने वाला वर्ग वस्त्र धारण करने और उपधियों के बढ़ाते जाने को

द्वादशाङ्ग सम्मत सिद्ध करने में प्रयत्नशील था। इतना ही नहीं, वह वर्ग द्वादशाङ्ग के नाम पर नवीन आगमों की रचना भी कर रहा था। सुनियोजित प्रचार, सुखशील साधनों द्वारा मुक्ति-प्राप्ति का सुलभ मार्ग, शास्त्र विहित योग्यताओं के बिना ही प्रत्येक जाति, वर्ण और लिङ्ग के लिये मुक्ति का मुक्त द्वार, नग्नताजन्य अनेक विपत्तियों से मुक्ति आदि ऐसे मनोवैज्ञानिक, तथाकथित उदार और प्रचारात्मक पहलू थे, जिनका जनमानस पर सहज ही प्रभाव पड़ता था। अपने बढ़ते हुए प्रभाव और प्रचार को देखकर जैन सघ के विद्रोही और शिथिलाचारी वर्ग ने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि मूल जैन सघ तो हमारा है, हमारे रचे हुए अथवा सकलित किये गये ग्रन्थ ही द्वादशाङ्ग आगम है। इससे भगवान् महावीर के मूल निर्ग्रन्थ परम्परा के नष्ट होने, उसके विकृत होने और मूल द्वादशाङ्ग के नाम पर रचित शास्त्रों के द्वादशाङ्ग के रूप में प्रचलित होने का भयकर खतरा उत्पन्न हो गया था और जैन मुनियों का आदर्श आचार ऐसे घरातल पर पहुँच गया था, जिसे देखकर जैन मुनियों के आचार के सम्बन्ध में गलत धारणा बन सकती थी।

इन्हीं दिनों बौद्ध धर्म का नैरान्म्यवाद, क्षणिकवाद और शून्यवाद राजाश्रय पाकर जन मानस को उद्वेलित कर रहा था। इसके कारण जन मानस में आत्मा और आत्मा के कल्याण के लिये किये जाने वाले तपश्चरण और चारित्र्य पर अनास्था उत्पन्न होने लगी थी। इस अनास्था को सांख्य मत के कूटस्थ नित्यवाद ने और हवा दी। कुल मिलाकर उस समय जनता की धार्मिक आस्थाएँ चंचल हो रही थी और जनता में दिशाहीनता की भावना व्याप्त थी। ऐसे काल में कुन्दकुन्द ने जनता को सही धार्मिक मार्ग-दर्शन कराने और तीर्थङ्करों के अनादि निधन सत्य को प्रचारित करने का दायित्व अपने ऊपर लिया और अपने तप पूत व्यक्तित्व, अविरत साधना एवं गम्भीर आगम ज्ञान के द्वारा सत्य धर्म को पुनः स्थापना की, मुनि-धर्म के अन्दर व्याप्त विकृतियों का परिमार्जन किया और अध्यात्म की गंगा बहाकर आत्मा के प्रति व्याप्त अनास्था को दूर किया। इसीलिए वे युग प्रवर्तक, युग पुरुष और क्रान्त दृष्टा के रूप में सर्वाधिक विख्यात हुए। मगल पाठ में भगवान् महावीर और गौतम गणधर के बाद उनके नाम-स्मरण का, उनके नाम पर मूल

सब कुन्दकुन्दान्वय प्रचलित होने एव परवर्ती आचार्यों द्वारा अपने आपको कुन्दकुन्दान्वयी मानने का यही रहस्य है ।

कुन्दकुन्द का समय

कुन्दकुन्द के समय के सम्बन्ध में इतिहासकारों में एकमत नहीं है । डा के वी. पाठक शिवकुमार महाराज को कदंबवंशी शिव भृगेश वर्मा मानते हैं, जिनके सम्बोधन के लिए समयसार के कनडी टीकाकार बालचन्द्र और संस्कृत टीकाकार श्रुतसागर की सूचना-नुसार कुन्दकुन्द ने पञ्चास्तिकाय की रचना की । इस आधार पर पाठक कुन्दकुन्द का होना शक स ४५० अथवा वि. स. ५८५ में मानते हैं । डा ए. चक्रवर्ती की मान्यता है कि ये शिवकुमार शिव भृगेश न होकर पल्लववंशी शिवस्कन्द वर्मा थे । इस आधार पर कुन्दकुन्द विक्रम की प्रथम शताब्दी के आचार्य माने हैं । डा ए. एन. उपाध्ये ने कुन्दकुन्द का काल ईसा की प्रथम शताब्दी का प्रारम्भ माना है । प. नाथूराम प्रेमी भी इस अभिमत से सहमत हैं ।

वर्तमान इतिहासकारों के समान प्राचीन धार्मिक वाङ्मय में भी इस सम्बन्ध में मतभेद रहा है । तिलोपपण्णत्ति में भगवान् महावीर के बाद की आचार्य-परम्परा दी है । उसके अनुसार दी हुई काल-गणना इस प्रकार है---

तीन केवलज्ञानी	६२ वर्ष
पाँच श्रुतकेवली	१०० वर्ष
११ अग १० पूर्व के धारी	१८३ वर्ष
पाँच एकादशाङ्गधारी	२२० वर्ष
चार आचाराङ्ग के धारी	११८ वर्ष
कुल	६८३ वर्ष

हरिवंशपुराण, धवला, जय धवला, आदि पुराण और श्रुतावतार भी इससे सहमत हैं । धवला, जयधवला के अनुसार इस काल के बाद ही धरसेनाचार्य को सभी अंगों और पूर्वों के एक देश का ज्ञान आचार्य परम्परा से प्राप्त हुआ । नन्दि संघ की प्राकृत पट्टावली में अन्तिम आचाराङ्ग धारी लोहाचार्य तक का काल ५६५ वर्ष दिया

है। लोहाचार्य के बाद अर्हदबलि, माघनन्दि, धरसेन, भूतबलि और पुष्पदन्त हुए। इन सबका काल उसमें जोड़कर ६८३ वर्ष का योग बताया है। वृहत् टिप्पणिका की सूची में धरसेन द्वारा वीर सं. ६०० में 'जोणिपाहुड' की रचना का उल्लेख है। पट्टावली के अनुसार कुन्दकुन्द अर्हदबलि से ५१ वर्ष पूर्व में पट्टासीन हुए थे। इस प्रकार कुन्दकुन्द का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी होता है। विद्वज्जन बोधक में कुन्दकुन्द का समय वीर सं. ७७० (ई. सं. २४३) माना है। इन्द्रनन्दि के अनुसार कुन्दकुन्द वीर सं. ७६३ (ई. सं. २३६) में हुए थे।

शास्त्रो, पट्टावलियों और विद्वानों की विभिन्न मान्यताओं का अध्ययन करके प्रो० हार्नले ने कुन्दकुन्द का समय ई० पू० १०८ निर्धारित किया* है और अब विद्वत्समाज ने इस निर्णीत काल को ही अपनी मान्यता प्रदान कर दी है। ज्योतिष काल-गणना के अनुसार आचार्य कुन्दकुन्द का जन्म शार्वरी नाम सवत्सर, माघ शुक्ला ५ ईसापूर्व १०८ में हुआ था।

कुन्दकुन्द का इतिवृत्त

कुन्दकुन्द एक समर्थ जिन शामन प्रभावक और युगप्रवर्तक आचार्य थे। किन्तु आश्चर्य है कि उनका प्रामाणिक इतिवृत्त आज उपलब्ध नहीं है। कथाकोषो, प्रशस्तियों, पट्टावलियों, शिलालेखों और कुछ ग्रन्थों में उनके बारे में कुछ स्फुट सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। उनको सग्रह करके भी उनका कोई जीवन-वृत्त समग्र रूप में सामने नहीं आता। यह सब सामग्री प्रायः दसवीं शताब्दी और उसके बाद की है। यदि इस सामग्री पर विश्वास किया जाय तो उनके इतिहास का रूप इस प्रकार बनता है—

कुन्दकुन्द का जन्म आन्ध्र प्रान्त में कुन्दकुन्दपुरम्** में हुआ था। पुष्यास्रवकथाकोष के अनुसार दक्षिण देश के कुरुमरई गांव के सेठ करमण्डु की पत्नी के उदर से कुन्दकुन्द का जन्म हुआ था। आराधना

*Indian Antiquary, Vol. XX, XXI.

**शिलालेखों के अनुसार कोणकुन्दे, प्रचलित नाम कोण्डकुन्दी, गुन्दूर तहसील

कथाकोष के अनुसार उनका नाम कौण्डेश था और वे एक प्रभावशाली राजा हुए ।

नन्दि संघ की पट्टावली के अनुसार उन्होंने ११ वर्ष की अल्पायु में ही निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा लेली तथा ३३ वर्ष तक मुनि-पद पर रहकर ज्ञान और चारित्र्य की सतत साधना की । ४४ वर्ष की आयु में (ई० पू० ६४) में आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हुए । वे ५१ वर्ष १० मास १५ दिन इस पद पर विराजमान रहे । उन्होंने ६५ वर्ष १० मास १५ दिन की दीर्घायु पाई और ई० पू० १२ में समाधि-मरण द्वारा स्वर्गारोहण किया ।

कुन्दकुन्द के नाम

उनका दीक्षा-नाम सभवतः पद्मनन्दि था, किन्तु वे अपने जन्म-स्थान के नाम पर कौण्डकुन्द या कुन्दकुन्द के नाम से अधिक विख्यात हुए । शास्त्रों, प्रशस्तियों और शिलालेखों में उनके पाँच नामों की चर्चा की गई है । वे नाम हैं—कुन्दकुन्द, पद्मनन्दि, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य और गृद्धपिच्छाचार्य । इनमें से कुन्दकुन्द स्थानपरक है, पद्मनन्दि उनका वास्तविक नाम है और शेष तीन नाम घटनापरक हैं, जिनका उल्लेख या संकेत ज्ञानप्रबोध, दर्शनसार, पट्टावलियों और शिलालेखों में किया गया है ।

वक्रग्रीव नाम के सम्बन्ध में यह किम्बदन्ती प्रचलित है कि एक बार कुन्दकुन्द स्वाध्याय कर रहे थे । स्वाध्याय करते हुए उन्हें समय का ध्यान नहीं रहा । वे अकाल में स्वाध्याय करते रहे । इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी ग्रीवा (गर्दन) वक्र हो गई । तबसे उनका नाम वक्रग्रीव प्रसिद्ध हो गया ।

कई विद्वान् इस किम्बदन्ती को प्रामाणिक नहीं मानते । इनकी मान्यता है कि किसी रोग के कारण उनकी ग्रीवा वक्र हो गई थी । निर्ग्रन्थ-परम्परा में वक्रगच्छ नाम से एक गच्छ था । श्रवण बेल-गोला के शक सं. १०१२ के शिलालेख नं. ५५ में वक्रगच्छ की आचार्य परम्परा भी दी है । संभव है, वक्रगच्छ नाम आचार्य कुन्दकुन्द के नाम पर ही पड़ा हो । इससे यह असंदिग्ध जान पड़ता है कि कुन्दकुन्द का एक नाम वक्रग्रीव अवश्य प्रचलित था ।

कुन्दकुन्द के एलाचार्य नाम के सम्बन्ध में एक किम्बदन्ती बहु-प्रचलित है और इसका आधार भी ज्ञान प्रबोध, दर्शनसार और कुछ शिलालेख हैं। इसके अनुसार तत्त्वाम्यास करते हुए कुन्दकुन्द को कुछ शका उत्पन्न हुई। विचार करने पर उन्हें समाधान नहीं मिला। तब वे सामायिक करने बैठ गये और उन्होंने सीमन्धर भगवान को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। सीमन्धर भगवान विदेह क्षेत्र में समवसरण में विराजमान थे। उन्होंने वहाँ हाथ उठाकर 'सद्धर्म बृद्धिरस्तु' कहकर आशीर्वाद दिया। उपस्थित लोगों के मन में यह जानने का कुतूहल हुआ कि जब यहाँ नमस्कार करने वाला कोई नहीं है तो भगवान ने आशीर्वाद किसको दिया। इसका समाधान भगवान की दिव्यध्वनि में हुआ कि यह आशीर्वाद भरत क्षेत्र स्थित कुन्दकुन्द मुनि को दिया गया है। इस पर दो देव (कही-कही दो चारण श्रद्धिधारी मुनि) कुन्दकुन्द के साथ अपने पूर्वभूत के प्रेम-सम्बन्ध के कारण कुन्दकुन्द के निकट गये और रात्रि होने के कारण गुफा के द्वार पर रात भर बैठे रहे। प्रातः काल उन्होंने कुन्दकुन्द को सारी घटना सुनाई और भगवान सीमन्धर के पास चलने के लिए पूछा। कुन्दकुन्द की महमति प्राप्त करके वे कुन्दकुन्द को ले गये। कुन्दकुन्द भगवान के सिंहासन के नीचे बैठकर सात दिन तक निराहार रहकर भगवान की दिव्यध्वनि सुनते रहे। एक दिन वहाँ के चक्रवर्ती ने उन्हें सिंहासन के नीचे बैठे हुए देख लिया। वहाँ के पुरुषों की पाँच सौ धनुष की अवगाहना के मुकाबिले कुन्दकुन्द की अवगाहना साढ़े तीन हाथ थी। यह देखकर चक्रवर्ती को बड़ा कुतूहल हुआ और उसने कुन्दकुन्द को चुटकी से उठाकर हथेली पर रख लिया और भगवान से विनयपूर्वक पूछा—भगवन् ! यह एला (इलायची) के बराबर मनुष्य किस क्षेत्र का निवासी है। तब भगवान की दिव्यध्वनि हुई—यह भरत क्षेत्र के मुनि कुन्दकुन्द हैं, जिनको मैंने कल आशीर्वाद दिया था। चक्रवर्ती बड़ा प्रभावित हुआ और भक्तिपूर्वक कुन्दकुन्द मुनि को यथास्थान आसीन कर दिया। सात दिन पश्चात् देव उन्हें आकाश मार्ग से जब वापिस ले जा रहा था, तब मार्ग में कहीं उनकी पिच्छी गिर गई। कुन्दकुन्द के कहने पर देव ने उन्हें भूमि पर उतारा। किन्तु पिच्छी तो सैकड़ों

योजन पीछे रह गई थी। तब कुन्दकुन्द ने वहाँ बिखरे पड़े गिद्ध के पंखों को एकत्रित करके पिच्छी बनाई और तब देव ने उन्हे उनकी गुफा तक पहुँचाया। वहाँ जाकर कुन्दकुन्द ने जन समूह को उपदेश दिया। फलतः सात सौ स्त्री-पुरुषों ने तत्काल मुनि-दीक्षा ले ली। कहते हैं उपर्युक्त घटना के कारण कुन्दकुन्द को एलाचार्य और गृद्धपिच्छाचार्य कहा जाने लगा।

उपर्युक्त घटना का एक किम्बदन्ती के रूप में तो महत्त्व हो सकता है, किन्तु सिद्धान्त और तथ्यों के प्रकाश में इस घटना पर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है। सिद्धान्त यह है कि कोई प्रमत्त संयत मुनि औदारिक शरीर से एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में नहीं जा सकता*। दसवीं शताब्दी से पूर्व किसी आचार्य ने इतनी महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख नहीं किया। स्वयं कुन्दकुन्द ने भी अपने किसी ग्रन्थ में इस घटना का संकेत नहीं किया। यदि इस घटना के आधार पर कुन्दकुन्द का एक नाम गृद्धपिच्छाचार्य पड़ गया तो उमास्वामी, जिनको गृद्धपिच्छाचार्य कहा जाता है, किस घटना के कारण यह नाम प्राप्त कर सके।

हमारी विनम्र सम्मति है कि यह घटना प्रामाणिक नहीं है। एलाचार्य नाम के कई आचार्य हो गये हैं। एक कुरल काव्य के कर्त्ता एलाचार्य है। दूसरे एलाचार्य वीरसेन के गुरु है। हमारा विचार है कि एलाचार्य यह कुन्दकुन्द का नाम नहीं, पद है। शास्त्रों में कई प्रकार के आचार्यों के उल्लेख मिलते हैं—यथा गृहस्थाचार्य, प्रतिष्ठाचार्य, बालाचार्य, निर्यापकाचार्य, एलाचार्य अथवा अनुदिशाचार्य। एलाचार्य उसे कहा जाता है कि गुरु के पश्चात् जो मुनि चारित्र्य का क्रम मुनि आश्रिकादि को बताता है, उसे अनुदिश या एलाचार्य कहा जाता है**। प्रायश्चित्त सग्रह, जिनेन्द्र पूजा पाठ आदि में एलाचार्य का उल्लेख है। वस्तुतः एलाचार्य एक पद रहा है। कुन्दकुन्दाचार्य को भी यह पद प्राप्त था।

* गोम्मटसार जीवकाण्ड, भाषा २३६ और पं० टोडरमल जी कृत उसकी टीका

** अनुगुरो पश्चाद्दिशति विधत्ते चरणक्रममित्यनुदिक् एलाचार्ये स्तस्मै विधिना
—भगवती आराधना, १७७

इसी प्रकार गृद्धपिच्छाचार्य यह भी एक विशेषण कहना उपयुक्त होगा। कुन्दकुन्द ने बलपूर्वक यह प्रतिपादित किया था कि 'णिपिच्छस्य णत्थि णिम्बाणं' अर्थात् पिच्छीहीन मुनि को निर्वाण प्राप्त नहीं होता। पिच्छी के प्रति उनके अत्यधिक आग्रह अथवा गृद्धता के कारण ही लोग उन्हें गृद्धपिच्छाचार्य कहने लगे हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

कुन्दकुन्द के गुरु

कुन्दकुन्द के गुरु का क्या नाम था, इसका उल्लेख हमें नहीं मिलता। बोधपाहुड* में उन्होंने स्वयं अपने आपको भद्रबाहु का शिष्य कहा है और अगली गाथा में उन्होंने भद्रबाहु को अपना गमक गुरु बताया है। गमक का अर्थ है बोधक, निश्चायक। गमक शब्द गम धातु से बना है, जिसके अनेक अर्थों में से बोध, ज्ञान, मार्ग ये अर्थ भी हैं।** भद्रबाहु को गमक गुरु कहने का प्रयोजन स्पष्ट है। भद्रबाहु अन्तिम श्रुत केवली थे। उन्हें सम्पूर्ण ग्यारह अङ्ग और चौदहपूर्व अर्थात् द्वादशांग का पूर्ण ज्ञान था। उनके काल में ही, अकाल के समय, स्थूलिभद्र के नेतृत्व में कुछ मुनियों ने निर्ग्रन्थ परम्परा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था और वस्त्र धारण करके शिथिलाचार का पोषण प्रारम्भ कर दिया था। भद्रबाहु ने जो ज्ञान दिया, जो मार्ग बताया, वही साक्षात् सत्य जिनधर्म है। कुन्दकुन्द अपने कथन की प्रामाणिकता बताने के लिये अपने आपको भद्रबाहु की साक्षात् परम्परा से जोड़ते हुए उन्हें अपना गमक गुरु और अपने आपको उनका शिष्य बताते हैं। उनके कहने का रहस्य यह है कि भद्रबाहु श्रुतकेवली थे, वे द्वादशांग और चौदह पूर्वों के पूर्ण ज्ञाता थे, वे ही मेरे ज्ञानदाता, सन्मार्गदर्शक परम्परा गुरु हैं, शिथिलाचार पोषक मेरे गुरु नहीं हैं।

*महविद्यारो हूमो मामासुत्तंसु ज जिणे कहियं ।

सा तह कहिय जाय सीसणय भद्वाहुस्स ॥

बोधपाहुड, ६१

वारस अगविद्याणअउदस पुब्ब विउलविस्तरणं ।

सुयणाणि भद्वाहु गमयगुरु भयवयो जयओ ॥

॥ ६२

**पाइअ सहसहण्णबो, पृ० २८७

लेकिन यह तो परम्परा गुरु की बात है, उनके साक्षात् गुरु कौन थे ? नन्दिसंघ की पट्टावली में इस प्रकार आचार्य-परम्परा दी है—भद्रबाहु, गुप्तिगुप्त, माधवनन्दि, जिनचन्द्र, कुन्दकुन्द । इसके आधार पर जिनचन्द्र को कुन्दकुन्द का गुरु माना जाता है । इसी प्रकार पंचास्तिकाय की टीका में आचार्य जयसेन ने 'कुमारनन्दि सिद्धान्त-देव शिष्यैः' इस वाक्य द्वारा कुन्दकुन्द को कुमारनन्दि सिद्धान्त देव का शिष्य स्वीकार किया है । संभव है, ये दोनों ही उनके गुरु हों—एक दीक्षागुरु और दूसरा शिक्षा-गुरु । इन उल्लेखों को निराधार मानने का कोई कारण नहीं है, ये ही वे सूत्र हैं, जिनसे इतिहास का ताना-बाना पूरा जा सकता है ।

कुन्दकुन्द की रचनार्य

कुन्दकुन्द रचित ग्रन्थों की सूची सम्बन्धी है । उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में सर्वसम्मत नाम इस प्रकार हैं—समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, रयणसार, वारस अणुवेक्खा, दंसणपाहुड, चारित्त पाहुड, सुत्त पाहुड, बोधपाहुड, भावपाहुड, मोक्खपाहुड, लिंगपाहुड, सील पाहुड, सिद्ध भक्ति, श्रुत भक्ति, चारित्र भक्ति, योगि भक्ति, आचार्य भक्ति, निर्वाण भक्ति, पचगुरु भक्ति, थोस्सामि यदि ।

इनके अतिरिक्त मूलाचार और तिरुक्कुरल ग्रन्थ भी कुन्दकुन्द के कहे जाते हैं । किन्तु इनके सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं । यह भी कहा जाता है कि कुन्दकुन्द ने ८४ पाहुडों और षड्खण्डागम के प्रथम तीन खण्डों पर परिकर्म नामक टीका की रचना की थी । पाहुडों में वर्तमान में आठ पाहुड उपलब्ध होते हैं, शेष उपलब्ध नहीं हैं । इसी प्रकार परिकर्म टीका भी उपलब्ध नहीं है । यद्यपि कोशकारों के अनुसार पाहुड का शब्दार्थ उपहार, परिच्छेद आदि अनेक विध हैं, किन्तु यहाँ पाहुड जैन विद्या का एक पारिभाषिक शब्द है । द्वादशांग वाणी का बारहवाँ अंग दृष्टिवाद कहलाता है । उसके पाँच भेद हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका, इनमें पूर्वगत श्रुत के चौदह भेद हैं । इनमें प्रत्येक के अनेक वस्तु अधिकार होते हैं और प्रत्येक वस्तु अधिकार में बीस-बीस पाहुड होते हैं । कुल

प्राकृतों की संख्या ३६०० है। इस प्रकार पाहुड पूर्वों के अवान्तर परिच्छेद है। हमारी विनम्र मान्यता है कि कुन्दकुन्द के काल तक जो पाहुड अपने समस्त रूप में अथवा आंशिक रूप में सुरक्षित बचे हुए थे, उनका सकलन अथवा उनकी रचना कुन्दकुन्द ने की थी। ऊपर जिस परिकर्म की चर्चा आई है, संभवतः वह भी दृष्टिवाद श्रुत के परिकर्म नामक भेद का सुरक्षित अंश ही सकलित या गुम्फित किया गया था।

श्री ११७ का १-१

कुन्दकुन्द की भाषा

कुन्दकुन्द की भाषा जैन शौरसेनी है। केवल कुन्दकुन्द ही नहीं सम्पूर्ण दिगम्बर वाङ्मय, जो प्राकृत में रचा गया है, जैन शौरसेनी में ही गुम्फित हुआ है। षट्स्रष्टागम और समयसार में लेकर कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गोम्मटसार इसी भाषा में रचे गये हैं। जैन शौरसेनी में यद्यपि अनेक शब्द शौरसेनी और अर्धमागधी के भी मिलते हैं, फिर भी यह भाषा मागधी और जैन महाराष्ट्री प्राकृतों के अधिक निकट है। जैन शौरसेनी में अकारान्त कर्त्ता एक वचन ओ में परिवर्तित हो जाता है। इसमें त के स्थान पर द और थ के स्थान पर ध हो जाता है। जैसे सुदकेवली भणिदो, कुधदि, भणदि, होदि। सस्कर्त्त के क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर त्ता, य, च्चा और दूण प्रत्यय लगते हैं। जैसे विजाणित्ता, भविय, किच्चा, जाणिदूण। क्रियातिपत्ति में भणेज्ज, जाणेज्ज, करेज्ज या इसके अकारान्त रूप मिलते हैं। ऐसे ही अन्य नियम हैं, जिनके द्वारा अन्य प्राकृतों की अपेक्षा जैन-शौरसेनी में स्वरो, व्यंजनो, धातुरूपों और सज्ञारूपों आदि में भिन्नरूपता हो जाती है।

कुन्दकुन्द ने अपने सभी ग्रन्थों की रचना जैन शौरसेनी में ही की है। इस प्राकृत के मूल में शूरसेन (ब्रज) में बोली जाने वाली मुख्य है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि सुदूर दक्षिण के निवासी कुन्दकुन्द ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के शूरसेन जनपद की बोली को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। उन्होंने अपनी भाषा में मगध और महाराष्ट्र में बोली जाने वाली बोलियों के शब्दों को भी सम्मिलित करके भाषा को एक नया आयाम प्रदान किया। इस प्रकार भाषा-भेद की संकीर्णता से ऊपर उठकर महर्षि कुन्दकुन्द ने आज से

दोसहस्राब्दो पूर्व में उत्तर और दक्षिण की भाषात्मक एवं भावनात्मक एकता का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया ।

नियमसार का परिषय

नियमसार आचार्य कुन्दकुन्द की महत्त्वपूर्ण कृति है । उनके तीन ग्रन्थ—समयसार, प्रवचनसार और पचास्त्रिकाय—प्राभूतत्रयी कहलाते हैं । यद्यपि जैन समाज में इनका जो विशेष महत्त्व और आदर है, वह महत्त्व और आदर नियमसार को प्राप्त नहीं है, किन्तु नियमसार के वर्ण्य विषय और उसकी प्रौढता को देखकर यह कहा जा सकता है कि नियमसार भी एक परमागम है और उसकी महत्ता किसी भी रूप में कम नहीं है । किन्हीं कारणों से इसका प्रचार इसकी महत्ता के अनुरूप नहीं हो पाया ।

आचार्य ने 'नियमसार' इस नाम की सार्थकता को बताते हुए कहा है—जो नियम से करने योग्य अर्थात् दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य हैं, वह नियम है और विपरीत के परिहार के लिए सार शब्द दिया गया है ।

अपने वर्ण्य विषय की उत्थानिका में आचार्य ने अपनी रचना का सम्पूर्ण सार इस प्रकार गुम्फित किया है—जैन शासन में मार्ग और मार्ग का फल ऐसे दो भेद किये हैं । मोक्ष-प्राप्ति का उपाय तो मार्ग है और उस उपाय के सेवन का फल मोक्ष है । नियम अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य मोक्ष का उपाय या मार्ग है और इनका फल निर्वाण (मोक्ष) है ।

प्रारम्भ के चार अधिकारो—जीवाधिकार, अजीवाधिकार, शुद्ध-भावाधिकार और व्यवहार चारित्र्याधिकार—में व्यवहार नय की मुख्यता से सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य का कथन किया गया है । इसमें आप्त, आगम और तत्त्वों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा है । तत्पश्चात् आप्त, आगम और छह तत्त्वार्थों और व्यवहार चारित्र्य का वर्णन किया है । व्यवहार-चारित्र्य में पाँच व्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तियों का कथन है ।

तदनन्तर सात अध्यायो में निश्चयनय की दृष्टि से मुनियों के चारित्र का वर्णन किया गया है। इन अधिकारो के नाम इस प्रकार हैं—निश्चय प्रतिक्रमणाधिकार, निश्चय प्रत्याख्यानाधिकार, निश्चयालोचनाधिकार, परम समाधि अधिकार, परम भक्त्याधिकार, और निश्चयावश्यकधिकार। अन्तिम बारहवा अधिकार शुद्धोपयोगाधिकार है। इसमें प्रारम्भ में व्यवहार और निश्चय नय की दृष्टि से केवलज्ञान का स्वरूप बताया है। अन्त में मुक्त होने वाले जीव की ऊर्ध्व गति, सिद्ध भगवान के स्वभाव गुण और मुक्त जीवो के लोकाकाश से आगे गति न होने का कारण दिया गया है। इस प्रकार यह परमागम बारह अधिकारो में गुम्फित किया गया है।

उत्तरकालीन साहित्य पर नियमसार का प्रभाव

उत्तरकालीन अनेक आचार्यों ने अपनी रचनाओ के कथ्य में नियमसार से मार्ग-दर्शन लिया है। अनेक रचनाओ में भाव रूप से अथवा शब्दश अनुसरण किया है। अपने सीमित उद्देश्य और स्थान को दृष्टि में रखते हुए हम यहाँ केवल तीन ग्रन्थो का ही उल्लेख करना पर्याप्त समझते हैं। ये ग्रन्थ हैं—उमास्वामी का तत्त्वार्थसूत्र, ममन्तभद्र कृत रत्नकरण्ड श्रावकाचार और नेमिचन्द्र कृत द्रव्य-संग्रह। तत्त्वार्थसूत्र का प्रारम्भ मोक्ष-मार्ग के कथन से हुआ है और उसका अन्त मार्ग-फल अर्थात् केवलज्ञान और मोक्ष के कथन से हुआ है। नियमसार में भी सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग माना है और अन्तिम अधिकार में केवलज्ञान की चर्चा करते हुए निर्वाण (मोक्ष) का वर्णन किया है। नियमसार के 'धर्मास्तिकायाभावे तत्तो परदो ण गच्छति' भाव को तत्त्वार्थसूत्र में 'धर्मास्तिकायाभावात्' इस सूत्र द्वारा व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार रत्नकरण्ड श्रावकाचार में सम्यग्दर्शन, आप्त आदि के लक्षण तथा द्रव्य संग्रह में द्रव्यो के लक्षण नियमसार के लक्षणों से बहुत समानता रखते हैं। हमें विश्वास है, इन ग्रन्थों की रचना के समय इन आचार्यों के सामने नियमसार रहा था और उन्होंने इसकी शैली और लक्षणो से बहुत सहायता ली होगी।

आभार-प्रदर्शन

प्रस्तुत ग्रन्थ के संशोधन-सम्पादन की प्रेरणा मुझे पूज्य एलाचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज से मिली । पूज्य महाराज श्री की हार्दिक भावना रही है कि आचार्य कुन्दकुन्द का सम्पूर्ण साहित्य संशोधित-सम्पादित होकर मूल और उसके अर्थ सहित प्रकाशित हो । महाराज श्री की प्रेरणा और आदेश से मैं इस पुण्य कार्य में प्रवृत्त हुआ हूँ । आचार्य कुन्दकुन्द-साहित्य के समयसार और रचणसार ग्रन्थों का संशोधन-सम्पादन और प्रकाशन हो चुका है, उसी शृङ्खला में नियम-सार का यह संशोधन-सम्पादन हुआ है । आशा है, विद्वज्जन और समाज पूर्वोक्त दोनों ग्रन्थों के समान इस ग्रन्थ को भी अपना स्नेह और आदर प्रदान करेगा । मैं पूज्य महाराजश्री के चरणों में अपने विनम्र श्रद्धा-सुमन समर्पित करता हूँ ।

बलभद्र जैन

दीपावली

२ नवम्बर, १९८६

विसयाणुक्कमणिका

पढमो जीवाधियारो	गाथा	१ से १६
विदियो अजीवाधियारो	,,	२० से ३७
तदियो सुद्धभावाधियारो	,,	३८ से ५५
चउत्थो ववहारचारित्ताधियारो	,,	५६ से ७६
पचमो परमत्थपडिक्कमणाधियारो	,,	७७ से ९४
छट्ठो पग्गमत्थ पच्चक्खाणाधियारो	,,	९५ से १०६
सत्तमो परमालोयणाधियारो	,,	१०७ से ११२
अट्ठमो णिच्छय पायच्छित्ताधियारो	,,	११३ से १२१
णवमो परम समाहि अधियारो	,,	१२२ से १३३
दसमो पग्गमभत्ति अधियारो	,,	१३४ से १४०
एँक्कारसमो णिच्छय परमावस्सयाधियारो	,,	१४१ से १५८
वारसमो सुद्धोवओगाधियारो	,,	१५९ से १८७

नियमसार की संक्षिप्तसार सहित विषयानुक्रमणिका

पठमो जीवाधियारो १-१६-१६

१-१६

गाथा-१ मंगलाचरण

गाथा के पूर्वाह्न में वीर जिन को नमस्कार किया है तथा उत्तराह्न में 'नियमसार' ग्रन्थ के कथन की प्रतिज्ञा की है।

गाथा-२ मोक्ष मार्ग और उसका फल

जिन शासन में मार्ग और मार्ग-फल दो प्रकार के बताये हैं। उसमें मोक्ष का उपाय तो मार्ग है और निर्वाण उमका फल है।

गाथा-३-४ नियमसार नाम की सार्थकता

जो करने योग्य है, वह नियम है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र नियम है। उसका फल निर्वाण है। विपरीत भावों का परिहार करने के लिये सार शब्द लगाया है।

गाथा-५-६ व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप

आप्त, आगम और तत्त्वार्थ के श्रद्धान को (व्यवहार) सम्यग्दर्शन कहते हैं। अठारह दोषों से रहित आप्त होता है। उसके मुख से निकले हुए पूर्वावर दोषरहित वचन आगम है। उसके द्वारा तत्त्वार्थ कहे गये हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश—ये तत्त्वार्थ हैं। ये गुण और पर्यायों से युक्त हैं।

गाथा-१०-१४ जीव का सङ्गण

जीव उपयोगमय है। उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग के दो भेद हैं—स्वभाव ज्ञान और विभाव ज्ञान। केवल ज्ञान स्वभाव ज्ञान है।

वह अतीन्द्रिय और असहाय है। यह शुद्ध ज्ञान है। विभाव ज्ञान दो प्रकार का है—सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान। सम्यग्ज्ञान चार प्रकार का है—मति, श्रुत, अवधि और मन पर्यय। मिथ्याज्ञान तीन प्रकार का है—कुमति, कुश्रुत और कुअवधि।

दर्शनोपयोग के दो भेद हैं—स्वभाव दर्शनोपयोग और विभाव दर्शनोपयोग। केवल दर्शन स्वभाव दर्शनोपयोग है। वह अतीन्द्रिय और असहाय है। चक्षु, अचक्षु और अवधि ये तीन विभाव दर्शनोपयोग है।

गाथा-१४-१६ पर्याय के भेद

पर्याय के दो भेद हैं—निरपेक्ष (स्वभाव पर्याय) और स्व-परापेक्ष (विभावपर्याय)। नर, नारक, निर्यञ्च और देव ये विभाव पर्याय हैं। कर्मोपाधि से रहित पर्याय स्वभाव पर्याय है। मनुष्य दो प्रकार के हैं—कर्मभूमिज और भोग-भूमिज। नरक मात प्रकार के हैं। निर्यञ्च चौदह प्रकार के हैं। देव चार प्रकार के हैं।

गाथा-१७-१९ नयों की अपेक्षा जीव के गुण, पर्यायों का कथन

व्यवहार नय से आत्मा पुद्गल कर्मों का कर्त्ता, भोक्ता है। अशुद्ध-निश्चय नय से आत्मा कर्मजनित भावों का कर्त्ता, भोक्ता है। द्रव्याधिक नय से जीव नर, नारकादि पर्यायो से भिन्न है और पर्यायाधिक नय से इन पर्यायों से जीव संयुक्त है।

विदियो अजीवाधियारो २-१८-३७

१७-३१

गाथा-२०-२६ पुद्गल के भेद

पुद्गल के दो भेद हैं—अणु (परमाणु) और स्कन्ध। स्कन्ध छह प्रकार के हैं—अतिस्थूल स्थूल (पृथ्वी, पर्वत आदि), स्थूल (घी, जल, तेल आदि), स्थूलसूक्ष्म (छाया, धूप आदि), सूक्ष्म स्थूल (चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्ध),

सूक्ष्म (कर्मवर्गणा के योग्य स्कन्ध) और अतिसूक्ष्म (कर्मवर्गणा से भिन्न स्कन्ध) ।

स्वरूप ही जिसका आदि, मध्य और अन्त है, इन्द्रियो से ग्राह्य नहीं है और अविभागी है, वह परमाणु कहलाता है । वह दो प्रकार का है—कारण परमाणु और कार्य परमाणु । पृथ्वी, जल, तेज और वायु का जो कारण है, वह कारण परमाणु है और स्कन्ध का अन्तिम भाग कार्य परमाणु है । कार्य परमाणु एक रस, एक रूप, एक गन्ध और दो स्पर्श गुण वाला है, वह स्वाभाव गुण वाला है और स्कन्ध विभाव गुण वाला है । परमाणु रूप पर्याय स्वाभाव पर्याय है और स्कन्ध रूप पर्याय विभाव पर्याय है । निश्चय से परमाणु को पुद्गल द्रव्य कहते हैं और व्यवहार नय में स्कन्ध को पुद्गल द्रव्य कहते हैं ।

गाथा-३० धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य और आकाश द्रव्य

धर्मद्रव्य जीव और पुद्गलो को चलने में और अधर्म द्रव्य ठहरने में निमित्त है । आकाश द्रव्य सब द्रव्यों को स्थान देने में निमित्त है ।

गाथा-३१-३२ काल द्रव्य

समय और आवलि अथवा भूत, भविष्य और वर्तमान के भेद से व्यवहार काल के दो अथवा तीन भेद हैं । लोकाकाश में जो कालाणु है, वह निश्चय काल है । कालद्रव्य द्रव्यों के परिणमन का कारण है ।

गाथा-३३-३७ द्रव्यों के बारे में विशेष ज्ञातव्य

धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य में स्वाभाव गुण पर्याय होती हैं । कालद्रव्य को छोड़कर पांच द्रव्य अस्तिकाय हैं । पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है, शेष द्रव्य अमूर्तिक है । जीव चैतन्य गुणवाला है, शेष अचेतन है । पुद्गल द्रव्य के सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं । धर्म अधर्म और एक जीव के असख्यात प्रदेश होते हैं । लोकाकाश के असख्यात और आलोकाकाश के अनन्त प्रदेश हैं । काल एक प्रदेशी है ।

गाथा-१ आत्मा ही उपादेय है

आत्मा को (स्व) आत्मा ही उपादेय है, शेष सब तत्त्व हेय है। शुद्धात्मा कर्मजनित गुण-पर्यायों से रहित है।

गाथा-२-६ शुद्धात्म तत्त्व का स्वरूप

शुद्ध जीव के स्वभाव स्थान, मानापमान भावस्थान, हर्षा-हर्ष भाव स्थान, प्रकृति-स्थिति-प्रदेश-अनुभाग-उदयस्थान, क्षय-क्षयोपशम, उपशम-उदय भाव स्थान, भव भ्रमण, जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, कुल, योनि, जीव स्थान, मार्गणा स्थान, दण्ड, द्वन्द्व, समत्त्व, शरीर, आलम्बन, राग, द्वेष, मूढता, भय, परिग्रह, शल्य, दोष, काय, क्रोध, मान, मद, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, लिङ्ग, सस्थान, सहनन, आकार—ये सब नहीं है।

गाथा-१०-११ सभी जीव शुद्ध हैं

द्रव्यार्थिक नय से मुक्त और संसारी जीव समान हैं। सिद्धो के समान समारी जीव भी अक्षरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय ज्ञान सम्पन्न, निर्मल और विशुद्धात्मा है।

गाथा-१२-१३ हेयोपादेय दृष्टि

पूर्वोक्त समस्त भाव व्यवहार नय से कहे जाते हैं, किन्तु वे परद्रव्य और परभाव हैं, अतः हेय हैं, केवल अन्तस्तत्त्व आत्मा ही उपादेय है।

गाथा-१४-१८ रत्नत्रय का स्वरूप

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य से मोक्ष होता है। विपरीत अभिनिवेश अथवा चल, मलिन, अगाढ रहित श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। सशय, विमोह, विभ्रम रहित ज्ञान अथवा तत्त्वों का अधिगम भाव सम्यग्ज्ञान है। पाप-क्रिया से निवृत्ति रूप परिणाम सम्यक्चारित्र्य है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में जिनेन्द्र कथित सूत्र और उसके जानने वाले पुरुष बाह्य निमित्त हैं तथा दर्शन मोहनीय का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम अन्तरंग कारण है।

गाथा-१-५ पाँच महाव्रत का स्वरूप

जीवों के आरम्भ से निवृत्ति रूप परिणाम अहिंसा व्रत है। राग, द्वेष मोह से होने वाले असत्य भाषण के परिणाम का त्याग सत्यव्रत है। पराई वस्तु के ग्रहण के भाव का त्याग अचौर्यव्रत है। स्त्रियों की वांछा रूप परिणाम अथवा मैथुन परिणामों का त्याग ब्रह्मचर्य व्रत है। निरपेक्ष भावना से समस्त बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग अपरिग्रह व्रत है।

गाथा-६-१० पाँच समितियों का स्वरूप

प्रासुक मार्ग से दिन में युग प्रमाण आगे देखकर चलना ईर्या समिति है। पैशुन्य, हास्य कर्कश, परनिन्दा और आत्म प्रशंसा रूप वचन छोड़कर स्व-पर हितकारी वचन बोलना भाषा समिति है। कृत, कारित, अनुमोदना रहित, प्रासुक, शास्त्र मे प्रशंसित और श्रावक द्वारा भक्तिपूर्वक दिया आहार ग्रहण करना एषणा समिति है। पुस्तक, कमण्डल आदि के उठाने धरने में यत्नाचार के परिणाम आदान निक्षेपण समिति है। एकान्त, प्रासुक, और अन्य द्वारा रोक न जाय, ऐसे स्थान पर मलमूत्रादि का क्षेपण करना प्रतिष्ठापना समिति है।

गाथा-११-१५ तीन गुप्तियों का स्वरूप

कालुष्य, मोह, संज्ञा, राग-द्वेषादि भावों का त्याग व्यवहार मनोगुप्ति है।

पाप की कारणभूत स्त्री कथा, राजकथा, चोर कथा और भक्तकथा का त्याग अथवा असत्य की निवृत्ति रूप वचन बोलना व्यवहार वचन-गुप्ति है।

बंधन, छेदन, मारण, आकुंचन तथा प्रसारण आदि काय-क्रियाओं की निवृत्ति व्यवहार कायगुप्ति है।

मन से रागादि की निवृत्ति निश्चय मनोगुप्ति है। असत्य आदि की निवृत्ति अथवा मौन निश्चय वचनगुप्ति है। काय-

क्रियाओं की निवृत्ति रूप कायोत्सर्ग अथवा हिसादि की निवृत्ति निश्चय कायगुप्ति है ।

गाथा १६-२० पंचपरमेष्ठी का स्वरूप

घाति कर्मों से रहित, अनन्त चतुष्टय से युक्त और चोतीस अतिशय से सयुक्त अरहन्त परमेष्ठी होते हैं । अष्ट कर्मों से रहित, अष्ट गुणों से सयुक्त और लोकाग्र में स्थित सिद्ध परमेष्ठी होते हैं । पचाचार से युक्त, पचेन्द्रिय जयी और ग्रीर, गभीर आचार्य परमेष्ठी होते हैं । रत्नत्रय से सयुक्त, जिनेन्द्र कथित पदार्थों का उपदेश करने वाले शूर और आकांक्षा रहित उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं । समस्त व्यापार से विप्रमुक्त, चार आराधनाओं में अनुरक्त, निर्ग्रन्थ और निर्मोह साधु परमेष्ठी होते हैं ।

गाथा-२१ उपसंहार

उपर्युक्त सम्पूर्ण कथन व्यवहार नय की मुख्यता से किया गया है ।

पंचमो परमत्थ पडिक्कमणाधियारो ५-१८-६४

६७-८१

गाथा-१-६ भेदाभ्यास से निश्चय चारित्र होता है

‘मैं मनुष्य, नारकी, तिर्यञ्च और देव नहीं हूँ, मैं मार्गणा स्थान, गुणस्थान और जीवस्थान नहीं हूँ, मैं बाल, बूढ़, तरुण और उसका कारण नहीं हूँ, मैं राग, द्वेष, मोह और उनका कारण नहीं हूँ, मैं क्रोध, मान, माया और लोभ नहीं हूँ ।

मैं इन सबका न कर्ता हूँ, न कारयिता हूँ और न अनुमन्ता हूँ । ऐसा भेदाभ्यास होने पर जीव इनके प्रति मध्यस्थ हो जाता है । उससे निश्चय चारित्र होता है ।

गाथा-७-१० निश्चय प्रतिक्रमण

रागादि भाव रहित आत्म-ध्यान, आराधना में वर्तन, आधार में स्थिरता और जिन-मार्ग में स्थिर भाव निश्चय प्रतिक्रमण है ।

गाथा-११-१७ साधु ही प्रतिक्रमण है

निःशल्य भाव में परिणमन करने वाला, त्रिगुप्ति में स्थिर, धर्म और शुक्ल ध्यान में आरूढ़, रत्नत्रय की भावना करने वाला, आत्मध्यान में लीन साधु प्रतिक्रमणस्वरूप है, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है ।

गाथा-१८ व्यवहार प्रतिक्रमण

भगवान् जिनेन्द्र ने प्रतिक्रमण सूत्र में प्रतिक्रमण का जैसा स्वरूप बताया है, उसको जानकर, उसकी जो भावना करता है, उसको प्रतिक्रमण होता है ।

छट्टो परमत्थ पञ्चक्खाणाधियारो ६-१२-१०६

८२-६३

गाथा-१ निश्चय प्रत्याख्यान का स्वरूप

वचन-व्यापार और शुभाशुभ भावों का त्याग करके शुद्धात्म स्वरूप का ध्यान करना निश्चय प्रत्याख्यान है ।

गाथा-२-१० अस्म-ध्यान में ज्ञानी का चिन्तन

“मैं केवल ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यस्वरूप हूँ, परभाव मेरे नहीं है, मैं उनका ज्ञाता-दृष्टा मात्र हूँ, मेरी आत्मा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध से रहित है, आत्मा ही मेरा आलम्बन है, मेरे ज्ञान-दर्शन-चारित्र-प्रत्याख्यान-सवर और योग में मैं हूँ, जीव अकेला ही जीवन-मरण करता है और वह अकेला ही कर्म-रज से रहित होकर सिद्ध होता है, मैं एक, शास्वत और ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला हूँ, शेष सब भाव सयोगी है और मुझसे पृथक् हैं, मैं समस्त दुश्चारित्र को मन-वचन-काय से छोड़कर त्रिविध चारित्र को धारण करता हूँ, सम्पूर्ण जीवों के प्रति मेरा समता भाव है, किसी के प्रति मेरा बैर नहीं है, मैं समस्त इच्छाओं का त्याग करके समाधि ग्रहण करता हूँ”—ज्ञानी आत्म-ध्यान में इस प्रकार चिन्तन करता है ।

गाथा-११-१२ प्रत्याख्यान का अधिकारी

कषाय रहित, इन्द्रियजयी, परीषह और उपसर्गों को जीतने में शूरवीर, तप में उद्यमी, संसार से भयभीत, जीव और

कर्मों का भेदाभ्यास करने वाला ही निश्चय प्रत्याख्यान कर सकता है.

सप्तमो परमालोचनाधियारो ७-६-११२

६४-६६

गाथा—१-६ निश्चय आलोचना का स्वरूप और उसके लक्षण नोकर्म, कर्म और विभाव गुण, पर्यायों से भिन्न आत्मा का ध्यान करना निश्चय आलोचना कहलाती है। आलोचन, आलुंछन, अविकृतिकरण और भावशुद्धि ये चार उसके लक्षण हैं। परिणामो को समता भाव में स्थापित करके आत्म-दर्शन करना आलोचन है। समताभाव रूप स्वाधीन निज आत्म-परिणाम आलुंछन है। माध्यस्थ भाव द्वारा अनन्त गुणों की निधान आत्मा की भावना करना अविकृतिकरण है। काम, मान, माया, लोभ रहित निर्मल भाव भावशुद्धि है।

अदृष्टमोषिच्छयप्रायश्चित्तधियारो ८-६-१२१

१००-१०८

गाथा-१-७ निश्चय प्रायश्चित्त का स्वरूप

व्रत, समिति, शील और संयम रूप परिणाम, इन्द्रिय-निग्रह, क्रोधादि विभावो के क्षय की भावना, निजात्म गुणों का चिन्तन, कषाय-विजय, आत्मज्ञान, उत्तम तप और ध्यान निश्चय प्रायश्चित्त है।

गाथा-८ निश्चय नियम का स्वरूप

वचन-रचना और रागादि भावो का त्याग करके आत्म-ध्यान करना निश्चय नियम है।

गाथा-९ कायोत्सर्ग का स्वरूप

शरीरादि परद्रव्यों में स्थिर भाव का त्याग करके आत्म-स्वरूप का निर्विकल्प ध्यान करना निश्चय कायोत्सर्ग कहलाता है।

नवमो परम समाहि अधियारो ९-१२-१३३

१०९-१२०

गाथा-१-२ परम समाधि का स्वरूप

वीतराग भाव, संयम-नियम-तप-धर्मध्यान और शुक्ल-ध्यान पूर्वक आत्मा का ध्यान करना परम समाधि है।

गाथा-३ समता भाव

समता भाव के बिना कायक्लेश, उपवास, अध्ययन एवं मौन से कोई लाभ नहीं ।

गाथा ४-१२ स्थायी सामायिक

सावध्य से विरत, त्रिगुप्ति से युक्त, जितेन्द्रिय, समस्त जीवों के प्रति समता रखने वाले, सयम-नियम-तप में निरत, बीतराग, आर्त-रौद्र ध्यान के त्यागी, शुभाशुभ भावों के परित्यागी, नो कषाय को छोड़ने वाले और धर्म-शुक्ल-ध्यान में निरत रहने वाले श्रमण के सामायिक स्थायी होती है ।

दसमो परमभक्ति अध्यायो १०-७-१४०

१२१-१२७

गाथा-१-३ निर्वाण भक्ति का स्वरूप

रत्नत्रय की भक्ति निश्चय निर्वाण-भक्ति है और सिद्धों के गुण-भेद जानकर उनकी भक्ति करना व्यवहार निर्वाण-भक्ति है ।

गाथा-४-७ निश्चय योग भक्ति का स्वरूप

आत्मा को रागादि विकल्पो और विपरीत अभिनिवेश के परिहार में लगाने से परम योग भक्ति होती है । इसी से जितेन्द्रो ने निर्वाण प्राप्त किया ।

ऐककारसमो परमावस्सयाधियारो ११-१८-१५८ १२८-१४५

गाथा-१-२ आवश्यक शब्द की निरुक्ति

जो अन्य के वश नहीं है, वह अवश है । अवश का कर्म आवश्यक है । इसी से निर्वाण प्राप्त होता है ।

गाथा ३-८ आवश्यक का अधिकारी

अशुभ भाव, शुभ भाव, द्रव्य-गुण पर्यायों में मन न लगाने वाले, परभाव को छोड़कर निर्मल आत्म स्वरूप का ध्यान करने वाले श्रमण के आवश्यक होता है । आवश्यक से हीन श्रमण चारित्र्य से अष्ट है ।

गाथा-६-११ आवश्यक से मुक्त भ्रमण अन्तरात्मा है

आवश्यक से मुक्त, अन्तः-बाह्य जल्पो का त्यागी, बर्म और शुक्ल ध्यान में परिणत भ्रमण अन्तरात्मा है। जो ऐसा नहीं है, वह बहिरात्मा है।

गाथा-१२-१४ प्रतिक्रमण की उपादेयता

प्रतिक्रमणादि क्रियाओं से बीतराग चारित्र प्राप्त होता है। प्रतिक्रमणादिक वचन-व्यापार स्वाध्याय है। ध्यानयुक्त प्रतिक्रमण उपादेय है।

गाथा १५-१८ ज्ञानी को उपदेश

ज्ञानी को निजसूत्र से प्रतिक्रमणादि की परीक्षा करके मौनपूर्वक कर्तव्य कर्म करना चाहिये, परस्पर विवाद नहीं करना चाहिये, पर—चित्ता छोड़कर अपनी ज्ञाननिधि को भोग करना चाहिये। आवश्यक कर्म द्वारा ही केवली बनते हैं।

बारसमो सुद्धोवओगाधियारो १२-२६-१८७

१४६-१७४

गाथा-१-१३ केवल ज्ञानी स्व-पर सबको जानते-देखते हैं

व्यवहार नय से केवली सबको जानते, देखते हैं और निश्चय नय से अपनी आत्मा को जानते, देखते हैं। सूर्य के प्रकाश और ताप के समान केवली के ज्ञान और दर्शन युगपत् होते हैं। यदि ज्ञान को पर प्रकाशक और दर्शन को स्वप्रकाशक माना जाय और इस प्रकार आत्मा को स्व-पर प्रकाशक माना जाय, तब तो ज्ञान और दर्शन भिन्न भिन्न मानने होंगे। वस्तुतः ज्ञान, दर्शन और आत्मा अभिन्न हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि ज्ञान परप्रकाशक है तो दर्शन पर प्रकाशक है, दर्शन स्व प्रकाशक है तो ज्ञान स्वप्रकाशक है। अतः केवल ज्ञान समस्त चेतन-अचेतन द्रव्यो और स्व को जानता है। केवल ज्ञान अतीन्द्रिय और प्रत्यक्ष ज्ञान है, जबकि इन्द्रिय ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। इसी

प्रकार केवल दर्शक भी प्रत्यक्ष दर्शन है, जबकि इन्द्रिय-दर्शन परोक्ष दर्शन है ।

गाथा-१४-१७ केवली की समस्त क्रिया ईहारहित होती है

केवली का ज्ञान और दर्शन, बचन, खड़े रहना, बैठना, बिहार करना समस्त क्रियायें ईहा और परिणामपूर्वक नहीं होतीं । इसलिये उन्हें कर्म-बन्ध नहीं होता ।

गाथा-१८ जीव की स्वभाव गति

केवली सम्पूर्ण कर्मों का नाश होने पर एक समय मात्र में लोक के अग्र भाग में पहुंच जाते हैं । (वे ही परमात्मा कहलाते हैं) ।

गाथा-१९-२० परमात्मा का स्वरूप

परमात्मा जन्म, जरा, मरण, अष्टकर्म से रहित, ज्ञानादि स्वभाव वाले, शुद्ध, अविनाशी, अछेद्य, अव्याबाध, अतीन्द्रिय, अनुपम, पुण्य पाप से रहित, पुनरागमन से रहित, नित्य, अचल और निरालम्ब है ।

गाथा-२१-२३ निर्वाण का स्वरूप

निर्वाण में दुःख, सुख, पीडा, बाधा, जन्म, मरण, इन्द्रिय, उपसर्ग, मोह, विस्मय, निद्रा, क्षुधा, तृषा, कर्म, नोकर्म, चिन्ता, ध्यान आदि नहीं हैं ।

गाथा-२४ सिद्ध भगवान के गुण

सिद्ध भगवान के केवल ज्ञान, केवल दर्शन, केवल सुख, केवल वीर्य, अमूर्तस्व, अस्तित्व, संप्रदेशत्व आदि स्वभाव गुण होते हैं ।

गाथा-२५-२६ लोकाग्र से आने न जाने का कारण

कर्म नष्ट होने पर जीव लोक के अग्रभाग पर्यन्त जाता

है उससे आगे नहीं जाता, क्योंकि आगे धर्मास्तिकाय का अभाव है ।

गाथा-२७-२९ आचार्य का आत्म-निवेदन

मैंने प्रवचन-भक्ति और निजात्म भावना से नियमसार ग्रन्थ की रचना की है । यदि इसमें कहीं पूर्वापर विरोध हो तो शास्त्र के ज्ञाता पुरुष उसे दूर करके शुद्ध कर लें । ईर्ष्यालु पुरुष के निन्दा-वचन सुनकर जिन मार्ग के प्रति अभक्ति नहीं करनी चाहिये ।

सिरि कोंडकुडाहरिय पणीदो

णियमसारो

जीवाधियारो

अह मगलायरणं—

गाहा— ^ॐ णमिदूण जिण वीरं, अणतवरणाणदंसणसहावं ।
 वोच्छामि णियमसारं, केवलि-सुदकेवलीभणिदं ॥१-१-१॥

अन्वयार्थ— (अणतवरणाणदंसणसहावं) अनन्त और श्रेष्ठ ज्ञान, दर्शन स्वभाव वाले (वीरं जिण) वीर जिनको (णमिदूण) नमस्कार करके (केवलि-सुदकेवलीभणिदं) केवलियो और श्रुतकेवलियो द्वारा कथित (णियमसारं) नियमसार नामक ग्रन्थ (वोच्छामि) कहता हूँ ।

अर्थ— (मै) अनन्त और श्रेष्ठ ज्ञान, दर्शन स्वभाव वाले वीर जिन को नमस्कार करके केवलियो और श्रुतकेवलियो द्वारा कथित नियमसार नामक ग्रन्थ कहता हूँ ।

मोक्ष-मार्ग और उसका फल

गाहा—मग्गो मग्गफलं तिय, दुब्बिहं जिणसासणे समक्खादं ।

३ मग्गो भौक्खउवायो, तस्स फलं होदि णिव्वाणं ॥१-२-२॥

अन्वयार्थ—(जिणसासणे) जिन शासन में (मग्गो) मार्ग (य) और (मग्गफलं) मार्ग का फल (ति) इस प्रकार (दुब्बिहं) दो प्रकार—दो भेद (समक्खादं) कहे गये है—उनमें (मग्गो) मार्ग तो (भौक्खउवायो) मोक्ष का उपाय है—और (णिव्वाणं) निर्वाण (तस्स फलं) उसका फल (होदि) है ।

अर्थ—जिन शासन में मार्ग और मार्ग का फल—इस प्रकार दो भेद कहे गये है । (उनमें) मोक्ष का उपाय तो मार्ग है और निर्वाण उसका फल है ।

नियम के साथ सार शब्द की मार्यकता

गाथा— णियमेण यं जं कज्जं, तण्णियमं णाणदंसणच्चरित्तं ।

८१ विचरीदपरिहरत्थं, भणिदं खलु सारमिदि वयणं ॥ १-३-३ ॥

अन्वयार्थ— (णियमेण यं) नियम से (जं) जो (कज्जं) करने योग्य है (तण्णियमं) वह नियम है— वह नियम (णाणदंसणच्चरित्तं) ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य है (विचरीदपरिहरत्थं) उनसे विपरीत भावों का परिहार करने के लिए (खलु) ही (सारं) सार (इदि वयणं) यह वचन (भणिदं) कहा गया है ।

अर्थ—नियम से जो करने योग्य है, वह नियम है (कहलाता है) (वह नियम) ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य है । उनसे विपरीत भावों का परिहार करने के लिए ही सार यह वचन कहा गया है ।

नियम और उसका फल

गाहा— नियमं मोक्षउवायो, तस्स फलं हवदि परमणिष्वाणं ।

एदेसि तिण्हं पि य, पत्तेयपरूवणा होदि ६ ॥१-४-४॥

अन्वयार्थ—(मोक्षउवायो) मोक्ष का उपाय (नियमं) नियम है (तस्स) उसका (फल) फल (परमणिष्वाणं) परम निर्वाण (हवदि) है (य) और (एदेसि) इन (तिण्हं पि) तीनों की (पत्तेय-परूवणा) पृथक्-पृथक् प्ररूपणा (होदि) होती है ।

अर्थ—मोक्ष का उपाय नियम है । उसका फल परम निर्वाण है और इन तीनों की (ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य की) पृथक्-पृथक् प्ररूपणा होती है (जो आगे को जायेगी) ।

गाथा--अत्तागमतच्छाणं, सद्वहणादो हवेदि सम्मत्तं । ३
ववगवअसेसदोसो, सयलगुणप्पा हवे अत्तो ॥१-५-५॥

अन्वयार्थ—(अत्तागमतच्छाणं) आप्त, आगम और तत्त्वों के (सद्वहणादो) श्रद्धान से (सम्मत्तं) सम्यक्त्व (हवेदि) होता है (ववगवअसेसदोसो) सम्पूर्ण दोषों से रहित (सयलगुणप्पा) समस्त गुणों में युक्त आत्मा-पुरुष (अत्तो) आप्त (हवे) होता है ।

अर्थ—आप्त, आगम और तत्त्वों के श्रद्धान से सम्यक्त्व (व्यवहार सम्यग्दर्शन) होता है । सम्पूर्ण दोषों से रहित और समस्त गुणों में युक्त आत्मा (पुरुष) आप्त होता है (कहा जाता है) ।

आप्त अठारह दोषो से रहित होता है

ॐ

गाहा—छुह-तण्ह-भीरु-रोसो, रागो मोहो चिता जरा रजा मिच्चू ।
सेदं खेद मदो रदि, विम्हय णिहा जणुब्बेगो ॥

॥१-६-६॥

५३ ५० णिस्सेस जोसरहिदो, केवलजाणादि परमविभवजुदो ।
सो परमप्पा वुच्चदि, तव्विवरीदो ण परमप्पा ॥१-७-७॥

अन्वयार्थ—(छुह-तण्ह-भीरु-रोसो) क्षुधा, तृषा, भय, रोष, (रागो) राग (मोहो) मोह (चिता) चिता (जरा) जरा (रजा) रोग (मिच्चू) मृत्यु (सेदं) स्वेद (खेद) खेद (मदो) मद (रदि) रति (विम्हय) विस्मय (णिहा) निद्रा (जणुब्बेगो) जन्म और उद्वेग (णिस्सेसवोसरहिदो) इन समस्त अठारह दोषो से रहित है और (केवलजाणादिपरमविभवजुदो) केवलज्ञानादि परमबैभव से युक्त है (सो) वह-पुरुष (परमप्पा) परमात्मा (वुच्चदि) कहलाता है (तव्विवरीदो) इससे विपरीत (परमप्पा) परमात्मा (ण) नहीं होता ।

अर्थ—क्षुधा, तृषा, भय, रोष, राग, मोह, चिन्ता, जरा, रोग, मृत्यु, स्वेद, खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा, जन्म और उद्वेग - जो इन समस्त अठारह दोषो से रहित है और केवलज्ञानादि परमबैभव से युक्त है, वह पुरुष परमात्मा कहलाता है । इससे विपरीत परमात्मा नहीं होता ।

- उगगाहा—तस्स मुहग्गदवयणं, पुब्बावरदोसविरहिदं सुदं । यं
 ये आगममिदि परिकहिदं, तेण दु कहिवा हवन्ति तच्चत्था ॥ य
 ॥१-८-८॥

अन्वयार्थ—(तस्स) उसके—अठारह दोष रहित परमात्मा के (मुहग्गदवयणं) मुख से निकले हुए वचन—जो (पुब्बावरदोसविरहिदं) पूर्वापर दोष से—विरोध से रहित है और (सुदं) शुद्ध है (आगममिदि) उसे आगम (परिकहिदं) कहा गया है (तेण दु) उस आगम के द्वारा (तच्चत्था) तत्त्वार्थ (कहिवा हवन्ति) कहे गये हैं ।

अर्थ - उसके (अठारह दोष रहित परमात्मा के) मुख से निकले हुए वचन, जो पूर्वापर दोष से (विरोध से) रहित है और शुद्ध है, उसे आगम कहा गया है । उस आगम के द्वारा तत्त्वार्थ कहे गये हैं ।

द्रव्य के छह भेद

उग्गाहा—जीवा पेँगलकाया, धम्माधम्मा य काल आयासं ।

तच्चत्था इदि भणिदा, णाणागुणपज्जयेहिं संजुत्ता ॥

. ॥१-६-६॥

अन्वयार्थ—(जीवा) जीव (पेँगलकाया) पुद्गलकाय (धम्मा-धम्मा) धर्म, अधर्म (काल) काल (य) और (आयासं) आकाश (इदि) ये (तच्चत्था) तत्त्वार्थ (भणिदा) कहे गये हैं—ये (णाणा-गुणपज्जयेहिं) विविध गुण और पर्यायो से (संजुत्ता) संयुक्त हैं ।

अर्थ—जीव, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म, काल और आकाश ये तत्त्वार्थ कहे गये हैं । ये विविध गुण और पर्यायो से संयुक्त हैं ।

उपयोग का लक्षण और भेद

उगगाहा—जीवो उद्योगमओ, उद्योगो णाणदंसणो होदि । ३
णाणुद्योगो दुविहो, सहावणाणं विहावणाणं ति ॥

॥१-१०-१०॥

अन्वयार्थ—(जीवो) जीव (उद्योगमओ) उपयोगमय है
(उद्योगो) उपयोग (णाणदंसणो) ज्ञान और दर्शन (होदि) है
(णाणुद्योगो) ज्ञानोपयोग (सहावणाणं) स्वभाव ज्ञान और
(विहावणाणं) विभावज्ञान (ति) इस प्रकार (दुविहो) दो प्रकार
का है ।

अर्थ—जीव उपयोगमय है । ज्ञान और दर्शन उपयोग है ।
ज्ञानोपयोग स्वभावज्ञान और विभाव ज्ञान इस प्रकार दो प्रकार
का है ।

ज्ञान के भेद

५ गाहा—केवलमिन्द्रियरहितं, असहायं तं सहावणाणंति ।
सण्णाणिदरवियप्पे, विहावणाणं हवे दुविहं ॥१-११-११॥

सण्णाणं चउभेयं, मदिसुदओही तहेव मणपज्जं ।
३ अण्णाणं तिबियप्पं, मदियादी भेदो चेव ॥१-१२-१२॥

अन्वयार्थ—(केवलं) केवल ज्ञान (इन्द्रियरहितं) इन्द्रियरहित अतीन्द्रिय है (असहायं) असहाय है किसी की सहायता की अपेक्षा से रहित है (त) उसे (सहावणाणं) स्वभाव ज्ञान (ति) ऐसा जानो (सण्णाणिदरवियप्पे) उसके सम्यग्ज्ञान और मिथ्या ज्ञान ऐसे भेद करने पर (विहावणाणं) विभाव ज्ञान (दुविहं) दो प्रकार का (हवे) है ।

(सण्णाणं) सम्यग्ज्ञान (चउभेय) चार प्रकार का है (मदिसुद ओही) मति, श्रुत, अवधि (तहेव) तथा (मणपज्जं) मन पर्यय (चेव) और (अण्णाण) अज्ञान-विभावज्ञान (मदियादी भेदो) मति आदि के भेद से (तिबियप्प) तीन प्रकार का है ।

अर्थ—केवल ज्ञान इन्द्रिय रहित (अतीन्द्रिय) है, असहाय है (किसी की सहायता की अपेक्षा से रहित है), उसे स्वभाव ज्ञान ऐसा जानो । उसके सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान ऐसे भेद करने पर विभाव ज्ञान (मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान इस प्रकार) दो प्रकार का है । सम्यग्ज्ञान चार प्रकार का है—मति, श्रुत, अवधि तथा मन पर्यय । और अज्ञान (मिथ्याज्ञान) मति आदि के भेद से तीन प्रकार का है ।

दर्शनोपयोग के भेद

उग्राहा—तह बंसणजबओगो, ससहावेदर वियप्पवो दुविहो ।

केवलमिन्द्रियरहिदं, असहायं तं सहावमिव भणिदं ॥

॥१-१३-१३॥

अन्वयार्थ—(तह) उसी प्रकार (बंसणजबओगो) दर्शनोपयोग (ससहावेदर वियप्पवो) स्वभाव और विभाव के भेद से (दुविहो) दो प्रकार का है (केवलं) केवलदर्शनोपयोग (इन्द्रिय रहित) इन्द्रिय रहित (अतीन्द्रिय) है (असहाय) असहाय है—किसी की सहायता की अपेक्षा से रहित है (तं) उसे (सहाव) स्वभाव दर्शनोपयोग (इवि) ऐसा (भणिदं) कहा है ।

अर्थ—उसी प्रकार दर्शनोपयोग स्वभाव और विभाव के भेद से दो प्रकार का है । केवल दर्शनोपयोग इन्द्रिय रहित (अतीन्द्रिय) है, असहाय है (किसी की सहायता की अपेक्षा से रहित है), उसे स्वभाव दर्शनोपयोग कहा है ।

गाहा—चक्षु अचक्षु ओही, तिण्णवि भणितं विभावविच्छित्ति ।

पज्जाओ दुविअप्पो, सपरावेक्खो य निरवेक्खो ॥

॥१-१४-१४॥

अन्वयार्थ—(चक्षु) चक्षु (अचक्षु) अचक्षु (ओही) अवधि (तिण्ण वि) तोनो ही (विभावविच्छित्ति) विभाव दर्शन (भणितं) कहे गये है (पज्जाओ) पर्याय (दुविअप्पो) दो प्रकार के है (सपरावेक्खो) स्व-परापेक्ष (य) और (निरवेक्खो) निरपेक्ष ।

अर्थ—चक्षु, अचक्षु और अवधि ये तीनो ही विभावदर्शन कहे गये है । पर्याय दो प्रकार के है—स्वपरापेक्ष और निरपेक्ष ।

स्वभाव और विभाव पर्याय

उगमाहा—जर-जारय-तिरिय-सुरा, पज्जाया ते विभावमिदि भणिदा ।

५ कम्मोपाधिविवज्जिद पज्जाया ते सहावमिदि भणिदा ॥
॥१-१५-१५॥

अन्वयार्थ—(जर-जारय-तिरिय-सुरा) मनुष्य, नारक, तिर्यञ्च और देव (पज्जाया) पर्याये (ते) वे (विभाव) विभाव पर्याय हैं (इदि) ऐसा (भणिदा) कहा गया है—जो (कम्मोपाधिविवज्जिद-पज्जाया) कर्मोपाधि से रहित पर्याये हैं (ते) वे (सहाव) स्वभाव पर्याये हैं (इदि) इस प्रकार (भणिदा) कहा गया है ।

अर्थ—मनुष्य, नारक, तिर्यञ्च और देव पर्याय है, वे विभाव पर्याय कही गई है । जो कर्मोपाधि से रहित पर्याय है, वे स्वभाव पर्याय कही गई है ।

चतुर्गंतियो के भेद

गाहा—माणुस्सा बुवियप्पा, कम्ममही-भोगभूमि संजादा ।

सत्तविहा णेरइया, णादब्बा पुढविभेदेण ॥

॥१-१६-१६॥

अउदहभेदा भणिदा, तेरिच्छा सुरगणा अउदभेदा ।

एवेसि वित्थारं, लोकविभागेसु णादब्बं ॥ ४

॥१-१७-१७॥

लोकविभागेसु

अन्वयार्थ-- (माणुस्सा) मनुष्य (बुवियप्पा) दो प्रकार के होते हैं (कम्ममही-भोगभूमिसंजादा) कर्म भूमिज और भोग भूमिज (पुढविभेदेण) पृथ्वी के भेद से (णेरइया) नारकी (सत्तविहा) मान प्रकार के (णादब्बा) जानने चाहिये (तेरिच्छा) निर्यञ्च (अउदहभेदा) चौदह प्रकार के (भणिदा) कहे गये हैं (सुरगणा) देव समूह (अउदभेदा) चार प्रकार के हैं (एवेसि) इनका (वित्थार) विस्तार (लोकविभागेसु) लोक विभाग नामक परमागम में (णादब्बं) जान लेना चाहिए ।

अर्थ—मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—कर्म भूमिज और भोग-भूमिज । पृथ्वी के भेद से नारकी मान प्रकार के जानने चाहिए । निर्यञ्च चौदह प्रकार के कहे गये हैं । देव समूह चार प्रकार के हैं । इनका विस्तार लोक विभाग परमागम में जान लेना चाहिये ।

आत्मा का कर्तृत्व और भोक्तृत्व

गाहा—कत्ता भोत्ता आदा, पोंगलकम्मस्स होवि बवहारो ।
कम्मजभावेणादा, कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो ॥

॥१-१८-१८॥

अन्वयार्थ—(आदा) आत्मा (पोंगलकम्मस्स) पुद्गल कर्मों का (कत्ता भोत्ता) कर्त्ता और भोक्ता (होवि) है (बवहारो) यह व्यवहार नय से है (णिच्छयदो दु) निश्चय—अशुद्ध निश्चय नय से तो (आदा) आत्मा (कम्मजभावेण) कर्मजनित भावों का (कत्ता भोत्ता) कर्त्ता भोक्ता है ।

अर्थ—आत्मा पुद्गल कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है—यह व्यवहार नय से है । निश्चय नय (अशुद्ध निश्चय नय) से तो आत्मा कर्मजनित भावों का कर्त्ता-भोक्ता है ।

व्यवहार और निश्चय नय से पर्यायो का कथन

गाहा—दृक्स्थिण जीवा, वदिरित्ता पुष्पभणितपञ्जाया ।

पञ्जयणयेण जीवा, संजुत्ता होति दुविहेहि ॥

॥१-१६-१६॥

अन्वयार्थ—(जीवा) जीव (दृक्स्थिण) द्रव्यार्थिक नय से (पुष्पभणितपञ्जाया) पूर्वोक्त पर्यायो से (वदिरित्ता) भिन्न है (पञ्जयणयेण) पर्यायाधिक नय से (जीवा) जीव (संजुत्ता) उनसे संयुक्त (होति) है (दुविहेहि) इस प्रकार दोनो नयो से जानना ।

अर्थ—जीव द्रव्यार्थिक नय से पूर्वोक्त पर्यायो से भिन्न है । पर्यायाधिक नय से जीव उनसे संयुक्त है । इस प्रकार दोनो नयो से जानना ।

इदि जीवाधियारो पढमोमृदखधोसमत्तो

अजीवाधियारो

पुद्गल द्रव्य के भेद

गाहा—अणुस्त्वधियप्येण वु, पौगलवत्त्वं हवेदि वुवियप्पं । ३
स्वधा ह छप्पयारा, परमाणू चेव वुवियप्पो ॥२-१-२०॥

अन्वयार्थ—(अणुस्त्वधियप्येण वु) अणू और स्कन्ध के भेद से (पौगलवत्त्वं) पुद्गल द्रव्य (वुवियप्पं) दो प्रकार का (हवेदि) होता है (स्वधा) स्कन्ध (ह) वास्तव में (छप्पयारा) छह प्रकार के है (चेव) और (परमाणू) परमाणु (वुवियप्पो) दो प्रकार के है ।

अर्थ—अणू और स्कन्ध के भेद से पुद्गल द्रव्य दो प्रकार का होता है । स्कन्ध वास्तव में छह प्रकार के है और परमाणु दो प्रकार के है ।

स्कन्ध पुद्गल के छह भेद

- गाहा अविचूलचूलचूलं, चूलसुहृमं सुहृमचूलं च ।
 सुहृमं अविचूलं इति, धराविषं होवि छम्भेवं ॥२-२-२१॥
- गाहा भूपव्वदमादीया, भणिदा अविचूलचूलमिवि संधा ।
 चूला इदि विण्णेया, सप्पी-जल-तेलमादीया ॥२-३-२२॥
- गाहा - छायातवमादीया, चूलेवर खंबमिवि वियाणाहि ।
 सुहृमचूलेदि भणिदा, संधा चउरक्खविसया य ॥२-४-२३॥
- गाहा - सुहृमा हवंति संधा, पाओग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो ।
 तत्थिवरीदा संधा, अविचूलमा इदि परूवेति ॥२-५-२४॥

अन्वयार्थ - (अविचूलचूल) अति स्थूल स्थूल (चूलं) स्थूल (चूलसुहृमं) स्थूल सूक्ष्म (च) और (सुहृमचूलं) सूक्ष्म स्थूल (सुहृमं) सूक्ष्म (अविचूलं) अति सूक्ष्म (इदि) इस प्रकार (धराविषं) पृथ्वी आदि स्कन्धो के (छम्भेवं) छह भेद (होदि) होते हैं ।

(भूपव्वदमादीया) पृथ्वी, पर्वत आदि (अविचूलचूल) अति स्थूलस्थूल (संधा) स्कन्ध (भणिदा) कहे गये हैं (सप्पी-जल तेल मादीया) घी, जल, तेल आदि (चूला) स्थूल स्कन्ध है (इदि) यह (विण्णेया) जानना चाहिए ।

(छायातवमादीया) छाया, धूप, आदि (चूलेवरखंबं) स्थूल सूक्ष्म स्कन्ध है (इदि) ऐसा (वियाणाहि) जानो (य) और (चउरक्ख विसया संधा) चार इन्द्रियो के विषयभूत स्कन्ध (सुहृमचूल) सूक्ष्म स्थूल है (इदि) यह (भणिदा) कहा गया है ।

(पुणो) पुन (कम्मवग्गणस्स पाओग्गा संधा) कर्मवर्गणा के योग्य स्कन्ध (सुहृमा) सूक्ष्म (हवंति) होते हैं (तत्थिवरीदा संधा) उनके विपरीत कर्मवर्गणा के अयोग्य स्कन्ध (अविचूलमा) अति सूक्ष्म होते हैं (इदि) ऐसा (परूवेति) कहते हैं ।

अर्थ—अति स्थूलस्थूल, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म और अति सूक्ष्म—इस प्रकार पृथ्वी आदि स्कन्धों के छह भेद होते हैं ।

पृथ्वी, पर्वत आदि अति स्थूल स्थूल स्कन्ध कहे गये हैं। घो. जल, तेल आदि स्थूल स्कन्ध हैं, यह जानना चाहिए।

छाया, धूप आदि स्थूलसूक्ष्म स्कन्ध है, ऐसा जानो। और चार इन्द्रियो के विषयभूत स्कन्ध सूक्ष्मस्थूल है, ऐसा कहा गया है।

पुन कर्मवर्गणा के योग्य स्कन्ध सूक्ष्म होते हैं और उनसे विपरीत (कर्मवर्गणा के अयोग्य स्कन्ध) अति सूक्ष्म होते हैं, ऐसा कहते हैं।

कारण परमाणु और कार्य परमाणु

गाहा - धातुचतुष्कस्स पुणो, जं हेतु कारणं ति तं ज्ञेयो । ॐ
संधाणं अवसाणो, णादब्बो कज्जपरमाणू ॥२-६-२५॥

अन्वयार्थ—(पुणो) पुन (धातुचतुष्कस्स) धातु-चतुष्क का—
पृथ्वी, जल, तेज और वायु का (जं हेतु) जो कारण है (तं) वह
(कारणं) कारण परमाणु है (ति) ऐसा (ज्ञेयो) जानना (संधाणं)
स्कन्धो के (अवसाणो) अवसान को (कज्जपरमाणू) कार्य परमाणु
(णादब्बो) जानना चाहिये ।

अर्थ—पुन धातु-चतुष्क का (पृथ्वी, जल, तेज और वायु का)
जो कारण है, वह कारण परमाणु है, ऐसा जानना । स्कन्धो के अव-
सान को कार्य परमाणु जानना चाहिये ।

परमाणु का स्वरूप

गाहा—अस्तावि अत्तमज्झं, अत्तंतं जेव इंदिए जेज्झं ।

अविभागी जं दब्बं, परमाणू तं वियाणाहि ॥२-७-२६॥

अन्वयार्थ—(अस्तावि) स्वस्वरूप ही जिसका आदि है (अत्तमज्झं) स्वस्वरूप ही जिसका मध्य है—और (अत्तंतं) स्वस्वरूप ही जिसका अन्त है (इंदिए) इन्द्रियो के द्वारा जो (जेवजेज्झं) ग्राह्य-ग्रहण करने योग्य नहीं है (जं) जो (अविभागी) अविभागी है (तं दब्बं) उस द्रव्य को (परमाणू) परमाणु (वियाणाहि) जानो ।

अर्थ- स्वस्वरूप ही जिसका आदि है, स्वस्वरूप ही जिसका मध्य है और स्वस्वरूप ही जिसका अन्त है, जो इन्द्रियो के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता और जो अविभागी है, उस द्रव्य को परमाणु जानो ।

स्वभाव और विभाव पुद्गल

गाहा - एगरसरूबगंधं, दोफासं तं हवे सहावगुणं ।

विहावगुणमिदि भणिदं, जिणसमये सब्बपयडत्तं ॥२-८-२७॥

अन्वयार्थ - (एगरसरूबगंधं) जो एक रस, एक रूप, एक गंध वाला है (दो फासं) और दो स्पर्श वाला है (तं) वह (सहावगुणं) स्वभाव गुण वाला (हवे) है (विहावगुणं) विभाव गुण वाले को (जिणसासणे) जिन शासन में (सब्बपयडत्तं) सर्व प्रगट - सब इन्द्रियो में ग्राह्य (इदि भणिदं) ऐसा कहा है ।

अर्थ-- जो एक रस, एक रूप, एक गन्ध और दो स्पर्श वाला है, वह (परमाणु) स्वभाव गुण वाला है । विभाव गुण वाले को जिन शासन में सर्वप्रगट (सब इन्द्रियो से ग्राह्य) कहा है ।

स्वभाव और विभाव पुद्गल का स्वरूप

उम्माहा—अण्णणिरावेँक्खो जो, परिणामो सो सहावपज्जाओ ।

संघसरूवेण पुणो, परिणामो सो विहावपज्जाओ ॥

॥२-६-२८॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (परिणामो) परिणाम (अण्णणिरावेँक्खो)
अन्य को अपेक्षा से रहित है (सो) वह (सहावपज्जाओ) स्वभाव
पर्याय है (पुणो) पुनः-जो (संघसरूवेण) स्कन्ध रूप (परिणामो)
परिणाम है (सो) वह (विहावपज्जाओ) विभाव पर्याय है ।

अर्थ—जा परिणाम अन्य को अपेक्षा से रहित है, वह स्वभाव-
पर्याय है । पुन जो स्कन्धरूप परिणाम है, वह विभाव पर्याय है ।

निश्चय और व्यवहार की अपेक्षा पुद्गल भेद्येण

गाथा—पौंगलदब्धं बुच्छदि, परमाणू णिच्छएण इदरेण ।

पौंगलदब्धो स्ति पुणो, ववदेसो होदि खंधस्स ॥२-१०-२६॥

अन्वयार्थ—(णिच्छएण) निश्चय नय से (परमाणू) परमाणु को (पौंगलदब्धं) पुद्गलद्रव्य (बुच्छदि) कहा जाता है । (पुणो) पुनः (इदरेण) व्यवहार नय से (खंधस्स) स्कन्ध का (पौंगलदब्धो) पुद्गल द्रव्य (स्ति) यह (ववदेसो) नाम (होदि) है ।

अर्थ निश्चय नय से परमाणु को पुद्गल द्रव्य कहा है । पुन व्यवहार नय से स्कन्ध का पुद्गल द्रव्य यह नाम है ।

धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य का उपकार

गाहा—गमणनिमित्तं धम्मं, अधम्मं ठिबि जीवपेँगलाणं च ।

अवगहणं आयासं, जीवादीसव्वदब्बाणं ॥

॥२-११-३०॥

अन्वयार्थ—(धम्मं) धर्मद्रव्य (जीवपेँगलाणं) जीव और पुद्गलो को (गमणनिमित्तं) गमन में निमित्त है (च) और (अधम्मं) अधर्मद्रव्य (ठिबि) उनकी स्थिति में निमित्त है (आयासं) आकाश द्रव्य (जीवादीसव्वदब्बाणं) जीवादि सब द्रव्यों को (अव-गहणं) अवगाहन का निमित्त है ।

अर्थ—धर्मद्रव्य जीव और पुद्गल को गमन में निमित्त है, अधर्म द्रव्य उनकी स्थिति में निमित्त है, आकाश द्रव्य जीवादि सब द्रव्यों को अवगाहन (स्थान देने में) निमित्त है ।

गाहा—समयावलिभेदेण दु, दुवियप्प अहव होवि तिवियप्पं । ५
तीवो संखेज्जावलिहदसंठाणप्पमाणं तु ॥

॥२-१२-३१॥

अन्वयायं—(समयावलिभेदेण दु) समय और आवलि के भेद से—व्यवहार काल के (दुवियप्पं) दो भेद हैं (अहव) अथवा (तिवियप्पं) तीन भेद—भूत, भविष्य और वर्तमान (होवि) होते हैं (तु) और ! (तीवो) अतीत काल (असंखेज्जावलिहदसंठाणप्पमाणं) असंख्यान-अनन्त आवलि प्रमाण है, ऐसा ही हृद सठाण अर्थात् संस्थान रहित सिद्धो का प्रमाण है ।

अर्थ—समय और आवलि के भेद से (व्यवहार काल के) दो भेद है अथवा (भूत, भविष्य, वर्तमान—ये) तीन भेद है । और अतीत काल असंख्यात (अनन्त) आवलि प्रमाण है, ऐसा ही संस्थान रहित (सिद्धो का) प्रमाण है ।

परमार्थ काल का स्वरूप

गाथा—जीवाद्बु पोंगलादो, णंतगुणा आवि संपदा समया ।

५१ (५२-५३) लोयायासे संति य, परमट्ठो सो हवे कालो ॥२-१३-३२॥

अन्वयार्थ—(संपदा) अब निश्चय काल का कथन करते हैं (जीवाद्बु) जीव से (अ) और (पोंगलादो) पुद्गल में (अवि) भी (अणंतगुणा) अनन्त गुणे (समया) समय है (य) और (लोयायासे) लोकाकाश में—जो कालाणु (संति) है (सो) वह (परमट्ठो) परमार्थ (कालो) काल (हवे) है ।

अर्थ—अब (निश्चय काल का कथन करते हैं) । जीव से और पुद्गल से भी अनन्त गुणे समय है और लोकाकाश में जो कालाणु है, वह परमार्थ काल है ।

चार द्रव्यो मे विभाव गुण पर्याय नही होती

गाहा—जीवादीदृग्वाणं, परिवर्तण कारणं हवे कालो ।

3 धम्मादिचतुष्पाणं, सहावगुणपञ्जया होंति ॥२-१४-३३॥

अन्वयार्थ — (जीवादीदृग्वाणं) जीव आदि द्रव्यो के (परिवर्तण-कारणं) परिवर्तन का कारण (कालो) काल (हवे) है (धम्मादिचतुष्पाणं) धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन चारो के (सहावगुणपञ्जया) स्वभाव गुण-पर्याय (होंति) होती है ।

अर्थ—जीवादि द्रव्यों के परिवर्तन का कारण काल है । धर्म आदि चारो के (धर्म, अधर्म, आकाश और काल के) स्वभाव गुण-पर्याय होती है ।

गाहा—एवे छद्दव्वाणि य, कालं मेत्तूज अस्थिकायस्ति ।

जिहिट्ठा जिणसमये, कायां तु बहुप्पदेसत्तं ॥२-१५-३४॥

अन्वयार्थ—(कालं) काल को (मेत्तूज) छोड़कर (एवे) ये (छद्दव्वाणि य) छह द्रव्य (अस्थिकाय स्ति) अस्तिकाय हैं, ऐसा (जिणसमये) जिन शासन में (जिहिट्ठा) कहा गया है (बहु-प्पदेसत्तं) बहुप्रदेशीयता (तु) निश्चय से (काया) काय कहलाता है ।

अर्थ—काल को छोड़कर ये छह द्रव्य (शेष पाँच द्रव्य) अस्तिकाय हैं, ऐसा जिन शासन में कहा गया है । बहु प्रदेशीयता निश्चय से काय कहलाता है ।

छह द्रव्यों के प्रदेशों की सख्या।

गाहा—संखेज्जासंखेज्जा-णंतपवेसा हवंति मुत्तस्स ।

धम्मधम्मस्स पुणो, जीवस्स असंखवेसा हु ॥२-१६-३५॥

१८८

लोयायासे ताव, इवरस्स अणंतयं हवे वेसा ।

कालस्स ण कायत्तं, एगपवेसो हवे-जम्हा ॥२-१७-३६॥

अन्वयार्थ - (मुत्तस्स) मूर्तिक द्रव्य पुद्गल के (संखेज्जा-संखेज्जाणंत पवेसा) सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश (हवंति) होते हैं (पुणो) और (धम्मधम्मस्स) धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य के (जीवस्स) और एक जीव के (असंखवेसा हु) असख्यात प्रदेश होते हैं (लोयायासे) लोकाकाश के (ताव) उतने अर्थात् असख्यात प्रदेश होते हैं (इवरस्स) अलोकाकाश के (अणंतयं) अनन्त (वेसा) प्रदेश (हवे) होते हैं (कालस्स) काल द्रव्य के (कायत्तं ण) कायपना नहीं है (जम्हा) क्योंकि वह (एगपवेसो) एक प्रदेशी (हवे) होता है ।

अर्थ—मूर्तिक द्रव्य (पुद्गल) के सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं । धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य और एक जीव के असख्यात प्रदेश होते हैं । लोकाकाश के उतने ही अर्थात् असख्यात प्रदेश होते हैं । अलोकाकाश के अनन्त प्रदेश होते हैं । कालद्रव्य के कायपना नहीं है क्योंकि वह एक प्रदेशी होता है ।

द्रव्यों में विशेषता

गाह्या—पौंगलद्रव्यं मुत्तं, मुत्तिविरहिवा ह्वन्ति सेसाणि ।

चेदणभावो जीवो, चेदणगुणवन्निवा सेसा ॥२-१८-३७॥

अन्वयार्थ—(पौंगलद्रव्यं) पुद्गल द्रव्य (मुत्तं) मूर्तिक है (सेसाणि) शेष द्रव्य (मुत्तिविरहिवा) अमूर्तिक (ह्वन्ति) हैं (जीवो) जीव (चेदणभावो) चैतन्य भाव वाला है (सेसा) शेष द्रव्य (चेदणगुणवन्निवा) चैतन्य गुण से रहित है ।

अर्थ—पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है, शेष द्रव्य अमूर्तिक है । जीव चैतन्य भाव वाला है, शेष द्रव्य चैतन्य गुण से रहित है ।

इति अजीवाधियारो विदियो सुदन्धो ममत्तो

सुद्धभावाधियारो

हेयोपादेय तत्त्व का कथन

गाहा—जीवादिबहिस्तत्त्वं, हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा ।

कम्मोपाधिसमुद्भव-गुणपञ्जएहि वविरित्तो ॥३-१-३८॥

अन्वयार्थ—(जीवादिबहिस्तत्त्वं) जीवादि बाह्य तत्त्व (हेयं) हेय है (अप्पणो) आत्मा को (अप्पा) आत्मा (उवादेयं) उपादेय है—यह आत्मा (कम्मोपाधिसमुद्भव-गुणपञ्जएहि) कर्मोपाधि से उत्पन्न होने वाले गुण, पर्यायो से (वविरित्तो) रहित है ।

अर्थ—जीवादि बाह्य तत्त्व हेय है । आत्मा को (केवल) आत्मा (ही) उपादेय है । (यह आत्मा—कारण परमात्मा) कर्मोपाधि से उत्पन्न होने वाले गुण पर्यायो से रहित है ।

शुद्धात्म तत्त्व का स्वरूप

उम्गाहा--जो खलु सहावठाणा, जो माणवमाणभावठाणा वा ।

जो हरिसभावठाणा, जो जीवस्साहरिस्स ठाणा वा ॥

॥३-२-३६॥

अन्वयार्थ --(जीवस्स) शुद्ध जीव के (खलु) निश्चय से (सहाव-
ठाणा) स्वभाव स्थान (जो) नहीं है (माणवमाणभावठाणा वा) मान,
अपमान भाव के स्थान (जो) नहीं है (हरिसभावठाणा) हर्ष भाव के
स्थान (जो) नहीं है (अहरिस्सभावठाणा वा) और अहर्ष भाव के
स्थान (जो) नहीं है ।

अर्थ--शुद्ध जीव के निश्चय ही स्वभाव स्थान नहीं है, मान-
अपमान भाव के स्थान नहीं है, हर्ष भाव के स्थान नहीं है और
अहर्ष भाव के स्थान नहीं है ।

शुद्ध जीव बन्धरहित है

गाहा—जो ठिविबन्धट्ठाणा, पयडिट्ठाणा पवेसठाणा वा ।

जो अणुभागट्ठाणा, जीवस्स ण उदयठाणा वा ॥

॥३-३-४०॥

अन्वयार्थ - (जीवस्स) जीव के (ठिविबन्धट्ठाणा) स्थिति बन्ध स्थान (जो) नहीं है (पयडिट्ठाणा) प्रकृति स्थान (पवेसठाणा वा) अथवा प्रदेश स्थान नहीं है (अणुभागट्ठाणा) अनुभाग स्थान (जो) नहीं है (उदयठाणा वा) और उदय स्थान (जो) नहीं हैं ।

अर्थ—शुद्ध जीव के स्थितिबन्ध स्थान, प्रदेश स्थान अथवा प्रकृतिस्थान नहीं है, अनुभागस्थान नहीं है अथवा उदयस्थान नहीं है ।

शुद्ध जीव के कोई भाव नहीं है

उत्गाहा—जो लहयभावठाणा, जो लयउवसमसहावठाणा वा ।

ओदहयभावठाणा, जो उवसमसहावठाणा वा ॥

॥३-४-४१॥

अन्वयार्थ—जीव के (लहयभावठाणा) क्षायिक भाव के स्थान (जो) नहीं है (लयउवसमसहावठाणा वा) क्षयोपशम स्वभाव के स्थान (जो) नहीं है (ओदहयभावठाणा) औदयिक भाव के स्थान (वा) अथवा (उवसमसहावठाणा) उपशम स्वभाव के स्थान (जो) नहीं हैं ।

अर्थ—जीव के क्षायिक भाव के स्थान नहीं है, क्षयोपशम स्वभाव के स्थान नहीं है, औदयिक भाव के स्थान अथवा उपशम स्वभाव के स्थान नहीं है ।

शुद्ध जीव के सासारिक विकार नहीं हैं।

गाथा चउगदिभवसंभ्रमण, जादिजरामरणरोगसोगा य ।

कुलजोणिजीवमगणठाणा जीवस्स णो संति ॥३-५-४२॥

अन्वयार्थ- (जीवस्स) शुद्ध जीव के (चउगदिभवसंभ्रमण) चतुर्गति रूप भव-भ्रमण (जादिजरामरणरोगसोगा य) जन्म, जरा, मरण, रोग और शोक (कुलजोणिजीवमगणठाणा) कुल, योनि, जीव स्थान और मार्गणा स्थान (णो संति) नहीं है ।

अर्थ—शुद्ध जीव के चतुर्गति रूप भव-भ्रमण, जन्म, जरा, मरण रोग, शोक, कुल, योनि, जीवस्थान और मार्गणास्थान नहीं है ।

शुद्ध जीव के विभाव भाव नहीं है

गाथा—णिहृदो णिहृदो, णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो ।

णीरागो णिहोसो, णिम्मूढो णिब्भओ अप्पा ॥३-६-४३॥

अन्वयार्थ (अप्पा) आत्मा (णिहृदो) दंड रहित (णिहृदो) द्वन्द्व रहित (णिम्ममो) ममत्त्व रहित (णिक्कलो) शरीर रहित (णिरालंबो) आलम्बन रहित (णीरागो) राग रहित (णिहोसो) दोष रहित (णिम्मूढो) मूढता रहित और (णिब्भओ) भय रहित है ।

अर्थ -- आत्मा दण्डरहित (मन, वचन, काय के योग्य द्रव्य कर्म और भाव कर्म का अभाव होने से दण्ड रहित), द्वन्द्वरहित, ममत्त्व-रहित, शरीर रहित, आलम्बन रहित, राग रहित, दोष रहित, मूढता रहित और भय रहित है ।

गाहा- निगगंथो नीरागो, निस्सल्लो सयलदोसणिम्मक्को ।

निक्कामो निक्कोहो, निम्माणो निम्मदो अप्पा ॥३-७-४४॥

अन्वयार्थ- (अप्पा) आत्मा (निगगंथो) अन्तर्बाह्य परिग्रह से रहित (नीरागो) रागरहित (निस्सल्लो) शल्यरहित (सयलदोस-निम्मक्को) समस्त दोषो मे विमुक्त (निक्कामो) कामरहित (निक्कोहो) क्रोधरहित (निम्माणो) मानरहित (निम्मदो) मदरहित है ।

अर्थ—आत्मा (शुद्ध जीव) अन्तर्बाह्य परिग्रह से रहित, रागरहित, शल्यरहित, समस्त दोषो मे विमुक्त, कामरहित, क्रोधरहित, मानरहित और मदरहित है ।

कारण परमात्मा का स्वरूप

गाहा - वण्णरसगंधफासा, बीपुंसणओसयादि पज्जाया ।

संठाणा संहणणा, सब्बे जीवस्स णो संति ॥३-८-४५॥

गाहा—अरसमरूवमगंधं, अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।

जाण अलिगग्गहणं, जीवमणिट्ठसंठाणं ॥३-९-४६॥

अन्वयार्थ—(वण्णरसगंधफासा) वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श (बीपुंसण-ओसयादि पज्जाया) स्त्री, पुरुष, नपुंसकादि पर्याये (संठाणा) सस्थान (संहणणा) महनन (सब्बे) ये सब (जीवस्स) जीव के (णो संति) नहीं है ।

(जीव) जीव को (अरसं) रस रहित (अरूव) रूप रहित (अगंधं) गंध रहित (अव्वत्तं) अव्यक्त (चेदणागुणं) चैतन्य गुण-वाला (असद्दं) शब्द रहित (अलिगग्गहणं) किसी लिंग द्वारा अग्राह्य (अणिट्ठसंठाणं) किसी आकार से अनिर्दिश्य (जाण) जान ।

अर्थ— वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, स्त्री-पुरुष-नपुंसक पर्याये, सस्थान, महनन—ये सब जीव के नहीं है ।

जीव को रसरहित, रूपरहित, गन्धरहित, अव्यक्त, चैतन्य गुण-वाला, शब्दरहित, किसी लिंग द्वारा अग्राह्य और किसी आकार से अनिर्दिश्य जान ।

द्रव्याधिक नय से ससारी और मुक्त जीवों का साम्य

गाहा—जारिसिया सिद्धप्पा, भवमल्लिय जीवा तारिसा होंति ।

जर-मरण-जम्म मुक्का, अट्ठगुणालंकिदा जेण ॥

॥३-१०-४७॥

अन्वयार्थ— (जारिसिया) जंमे (सिद्धप्पा) सिद्धात्मा है (तारिसा) वंमे ही (भवमल्लिय) समार मे लीन (जीवा) जीव (होंति) होते है (जेण) जिस कारण मे— ये (जर-मरण-जम्म मुक्का) जरा, मरण और जन्म मे मुक्त है और (अट्ठगुणालंकिदा) आठ गुणों मे अलंकृत है ।

अर्थ—जंमे सिद्धात्मा है. वंमे ही समार मे लीन (ससारी) जीव होते है, जिस कारण मे ये जरा मरण और जन्म मे मुक्त है और आठ गुणों मे अलंकृत है ।

सभी जीव शुद्ध है

गाथा—असरीरा अबिणासा, अर्णिबिया जिम्मला विसुद्धप्पा ।

। ५५.४६५॥ जह लोयग्गे सिद्धा, तह जीवा संसिदी जेया ॥

॥३-११-४८॥

अन्वयार्थ—(जह) जिस प्रकार (लोयग्गे) लोक के अग्र भाग में (सिद्धा) सिद्ध भगवान् (असरीरा) अशरीरी (अबिणासा) अविनाशी (अर्णिबिया) अतीन्द्रिय ज्ञान सम्पन्न (जिम्मला) निर्मल और विशुद्ध आत्मा है (तह) उसी प्रकार (संसिदी) समार में (जीवा) जीव (जेया) जानने चाहिण ।

अर्थ—जिस प्रकार लोक के अग्र भाग में सिद्ध भगवान् अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय ज्ञान सम्पन्न, निर्मल और विशुद्धात्मा है, उसी प्रकार समार में (ससारी) जीव जानने चाहिण ।

व्यवहार और निश्चय नय से जीव का स्वभाव

गाथा--एदे सव्वे भावा, व्यवहारणयं पडुक्ख भणिदा हु ।

सव्वे सिद्धसहावा, सुद्धणया संसिदी जीवा ॥३-१२-४६॥

अन्वयार्थ - (एदे) ये (सव्वे) सब (भावा) भाव (हु) वास्तव में (व्यवहारणयं पडुक्ख) व्यवहार नय का आश्रय करके (भणिदा) कहे गये हैं (सुद्धणया) शुद्ध नय में (संसिदी) ससार के (सव्वे) सब (जीवा) जीव (सिद्धसहावा) सिद्ध भगवान के समान स्वभाव वाले हैं ।

अर्थ- ये सब (पूर्वोक्त) भाव वास्तव में व्यवहार नय का आश्रय करके कहे गये हैं । शुद्ध नय से ससार के सभी जीव सिद्ध भगवान के समान स्वभाव वाले हैं ।

हेयोपादेय वृष्टि

गाहा— पुष्कल सयसभावा, परवच्चं परसहावमिदि हेयं ।

सगदव्वमुवावेयं, अंतरतच्चं हवे अप्पा ॥३-१३-५०॥

अन्वयार्थ— (पुष्कल सयसभावा) पूर्वोक्त समस्त भाव (परसहावं) पर स्वभाव है (परवच्चं) पर द्रव्य है (इदि) इसलिए (हेयं) हेय हैं (अंतरतच्चं) अन्तस्तत्त्व ऐसा (सगदव्वं) स्वद्रव्य (अप्पा) आत्मा (उवावेयं) उपादेय हैं ।

अर्थ—पूर्वोक्त समस्त भाव पर स्वभाव हैं, परद्रव्य है, इसलिए हेय है । अन्तस्तत्त्व ऐसा स्वद्रव्य आत्मा उपादेय है ।

गाहा—विबरोदाभिनिवेशविवज्जिदं सदहणमेव सम्मत्तं ।

संसयविमोहविब्रमविवज्जिदं होदि सण्णाणं ॥

॥३-१४-५१॥

गाहा - चलमत्तिणमगाढत्तविवज्जिदं सदहणमेव सम्मत्तं ।

अधिगमभावो णाण, हेयोपादेयतच्चाणं ॥

॥३-१५-५२॥

गाहा—सम्मत्तस्स णिमित्तं, जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा ।

अंतरहेदु भणिदा, वंसणमोहस्स खय पहुवी ॥

॥३-१६-५३॥

गाहा सम्मत्त सण्णाणं, विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं ।

ववहारणिच्छएण दु, तम्हा चरण पवक्खामि ॥

॥३-१७-५४॥

गाहा - ववहारणयच्चरित्ते, ववहारणयस्स होदि तवचरण ।

णिच्छयणयच्चरित्ते, तवचरणं होदि णिच्छयदो ॥

॥३-१८-५५॥

अन्वयार्थ (विबरोदाभिनिवेशविवज्जिदं सदहणमेव) विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान ही (सम्मत्तं) सम्यग्दर्शन है (संसयविमोह-विब्रमविवज्जिदं) संशय, विमाह और विभ्रम में रहित—ज्ञान (सण्णाणं) सम्यग्ज्ञान (होदि) है ।

(चलमत्तिणमगाढत्तविवज्जिदं सदहणमेव) चल, मलिन और अगाढरहित श्रद्धान ही (सम्मत्तं) सम्यक्त्व है (हेयोपादेयतच्चाणं) हेय और उपादेय तत्त्वों का (अधिगमभावो) जानने रूप भाव (णाणं) ज्ञान है ।

(सम्मत्तस्स) सम्यग्दर्शन के लिये (णिमित्तं) बाह्य निमित्त (जिण-सुत्तं) जिनेन्द्र द्वारा कथित द्रव्य श्रुत अथवा (तस्स) उस जिन सूत्र के (जाणया पुरिसा) जानने वाले पुरुष है (वंसणमोहस्स) दर्शन मोह-

नीय कर्म के (क्षय पहुँची) क्षय आदि को (अन्तरहेतु) अन्तरंग कारण (भणिका) कहा है ।

(मोक्षस्त) मोक्ष-प्राप्ति के लिये (सम्पत्) सम्यक्त्व होता है (सम्पत्) सम्यग्ज्ञान (विज्जि) रहता है (चरणं) चारित्र (होवि) होता है (सम्पत्) इसलिये— मैं (व्यवहारनिच्छयण तु) व्यवहार और निश्चय मे (चरणं) चारित्र को (पववस्सामि) कहूँगा (सुण) तू सुन ।

(व्यवहारणयचरित्ते) व्यवहार नय के चारित्र मे (व्यवहारणयस्स) व्यवहार नय का (तवचरणं) तपश्चरण (होवि) होता है (निच्छयणय-चरित्ते) निश्चय नय के चारित्र मे (निच्छयवो) निश्चय से (तवचरणं) तपश्चरण (होवि) होता है ।

अर्थ— विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है । मशय, विमोह, विभ्रम मे रहित ज्ञान सम्यग्ज्ञान है ।

चल, मलिन और अगाढ़रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है । हेय और उपादेय तत्त्वों का जानने रूप भाव ज्ञान है ।

सम्यग्दर्शन का बाह्य निमित्त जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित द्रव्यश्रुत है या उस जिन सूत्र के जानने वाले पुरुष है । दर्शन मोहनीय के क्षय आदि को अन्तरंग कारण कहा है ।

मोक्ष-प्राप्ति के लिये सम्यक्त्व होता है, सम्यग्ज्ञान रहता है, चारित्र होता है । इसलिये मैं व्यवहार और निश्चय मे चारित्र को कहूँगा, तू सुन ।

व्यवहार नय के चारित्र मे व्यवहार नय का तपश्चरण होता है और निश्चय नय के चारित्र मे निश्चय मे तपश्चरण होता है ।

इदिसुद्धभाषाधियारो तदियां सुदल्लघो समस्तो

ववहारचरित्ताधियारो

५१४

अहिमा व्रत का स्वरूप

गाहा -कुलजोणिजीवमग्गणठाणाविसु जाणिद्वूण जीवाणं ।

३ तस्सारंभणियत्तणपरिणामो होवि पढमववं ॥४-१-५६॥

अन्वयार्थ --(जीवाणं) जीवा के (कुलजोणिजीवमग्गणठाणाविसु) कुल, योनि, जीव स्थान, मार्गणा स्थान आदि (जाणिद्वूण) जानकर (तस्स) उनके (आरंभणियत्तणपरिणामो) आरम्भ से ही निवृत्ति रूप परिणाम--वह (पढमववं) प्रथम व्रत (होवि) है ।

अर्थ---जीवो के कुल, योनि, जीव स्थान, मार्गणा स्थान आदि जानकर उनके आरम्भ से निवृत्तिरूप परिणाम--वह प्रथम व्रत है ।

गाहा -- रागेण व दोसेण व मोहेण व मोसभासपरिणामं ।

जो पजहवि साहु सया विबियबवं होवि तस्सेव ॥४-२-५७॥

अन्वयार्थ—(रागेण व) राग से (दोसेण व) द्वेष से (मोहेण व) अथवा मोह से होने वाले (मोसभासपरिणामं) असत्य भाषण के परिणाम को (जो साहु) जो साधु (सया) सदा (पजहवि) छोड़ता है (तस्सेव) उसी के (विबियबवं) द्वितीय व्रत (होवि) होता है ।

अर्थ—राग से, द्वेष से अथवा मोह में होने वाले असत्य भाषण के परिणाम को जो साधु सदा छोड़ता है, उसी के द्वितीय व्रत होता है ।

गाहा—गामे वा णयरे वा, रण्णे वा पेछिवूण परमट्ठं ।

जो मुयवि गहणभावं, तिदियवदं होदि तस्सेव ॥४-३-५८॥

अन्वयार्थ (गामे वा) ग्राम में (णयरे वा) नगर में (रण्णे वा) अथवा अरण्य में (परमट्ठं) पराई वस्तु को (पेछिवूण) देखकर (जो) जो माघु (गहणभावं) ग्रहण के भाव को (मुयवि) छोड़ता है (तस्सेव) उसी के (तिदियवदं) तृतीय व्रत (होदि) होता है ।

अर्थ—ग्राम में नगर में अथवा अरण्य में पराई वस्तु को देखकर जो माघु ग्रहण भाव को छोड़ता है, उसी के तृतीय व्रत होता है ।

ब्रह्मचर्य व्रत का स्वरूप

गाहा—बटूण इत्थिरूवं, बांछाभावं निवत्तवे तासु ।

मेहुणसण्णविबज्जिअ परिणामो अहव तुरियववं ॥४-४-५६॥

अन्वयार्थ —(इत्थिरूवं) स्त्रियों का रूप (बटूण) देखकर (तासु) उनमें (बांछाभावं) इच्छा भाव को (निवत्तवे) त्यागता है (अहव) अथवा (मेहुणसण्णविबज्जिअ परिणामो) मैथुन संज्ञा रहित परिणाम करता है, उसके (तुरियववं) चतुर्थ व्रत होता है ।

अर्थ -स्त्रियों का रूप देखकर उनमें इच्छा भाव को त्यागता है अथवा मैथुन संज्ञा रहित परिणाम करता है, उसके चतुर्थ व्रत होता है ।

गाहा—सर्व्वेसि गंधाणं, चागो गिरवेँस्सभावणापुव्वं ।

पंचमवदमिदि भणिदं, चारित्तभरं वहंतस्स ॥४-५-६०॥

अन्वयार्थ—(गिरवेँस्सभावणापुव्वं) निरपेक्ष भावनापूर्वक (सर्व्वेसि गंधाणं) समस्त परिग्रह का (चागो) त्याग (चारित्तभरं) चारित्र के भार को (वहंतस्स) वहन करने वाले साधु का (पंचम-वदं) पंचम व्रत है (इदि) ऐसा (भणिदं) कहा है ।

अर्थ—निरपेक्ष भावनापूर्वक समस्त (आभ्यन्तर और बाह्य) परिग्रह का त्याग चारित्र के भार को वहन करने वाले साधु का पंचम व्रत है, ऐसा कहा है ।

होई 56, 57
महिदं ५१५४
कहिदं ५१७५
साधुमती ५१५२, १५५

गाहा—फासुगमग्गेण बिबा, अवलोगंतो जुगप्पमाणं हि ।

६ गच्छवि पुरबो समणो, इरियासमिदी हवे तस्स ॥४-६-६१॥

अन्वयार्थ—(समणो) जो साधु (फासुगमग्गेण) प्रासुक मार्ग से (बिबा) दिन में (जुगप्पमाणं हि) युग प्रमाण (पुरबो) आगे (अवलोगंतो) देखता हुआ (गच्छवि) चलता है (तस्स) उसके (इरियासमिदी) ईर्यासमित (हवे) होती है ।

अर्थ--जो साधु प्रासुक (जीव जन्तु रहित) मार्ग से दिन में युग प्रमाण आगे देखकर चलता है, उसके ईर्यासमिति होती है ।

गाहा पेसुण्णहासकक्कसपरणिदप्पपसंसिबं वयणं ।

परिचित्ता सपरहिबं, भासासमिदी वदंतस्स ॥४-७-६२॥

अन्वयार्थ—(पेसुण्णहासकक्कसपरणिदप्पपसंसिबं) पैशुन्य—
चुगली, हास्य, कर्कश, परनिदा और आत्म प्रशंसा रूप (वयणं)
वचन को (परिचित्ता) त्याग कर (सपरहिबं) स्व और पर हित
रूप (वदंतस्स) बोलने वाले साधु के (भासासमिदी) भाषा समिति
होती है ।

अर्थ—पैशुन्य (चुगली), हास्य, कर्कश, परनिन्दा और आत्म
प्रशंसा रूप वचन को छोड़कर स्व और परहित रूप बोलने वाले
साधु के भाषा समिति होती है ।

एषणासमिति का स्वरूप

गाहा—कबकारिबाणुमोदणरहिबं तह पासुगं पसत्थं च ।

दिण्णं परेण भत्तं, संभुत्ती एसणासमिदी ॥४-८-६३॥

अन्वयार्थ—(कबकारिबाणुमोदणरहिबं) कृत, कारित और अनु-
मोदना रहित (सह) तथा (पासुगं) प्राप्तुक (पसत्थं च) और शास्त्र
मे प्रशंसित (परेण) श्रावक के द्वारा (दिण्णं) भक्ति से दिये हुए
(भत्तं) आहार को (संभुत्ती) समभाव से ग्रहण करना (एसणा-
समिदी) एषणा समिति है ।

अर्थ—कृत-कारित और अनुमोदना रहित तथा प्राप्तुक और
शास्त्र मे प्रशंसित, श्रावक के द्वारा भक्ति से दिये हुए आहार को
समभाव से ग्रहण करना एषणा समिति है ।

आदान निक्षेपण समिति का स्वरूप

गाहा—पुत्थय कमंडलादि, गहणविसग्गेसु पयत्त परिणामो ।

आदावणणिकखेवणसमिदो होदि त्ति णिद्दिट्ठा ॥४-६-६४॥

अन्वयार्थ - (पुत्थयकमंडलादि) पुस्तक, कमण्डल आदि के (गहणविसग्गेसु) उठाने, धरने में (पयत्तपरिणामो) यत्नाचार के जो परिणाम है, वह (आदावणणिकखेवणसमिदो) आदान निक्षेपण समिति (होदि) है (त्ति) ऐसा (णिद्दिट्ठा) कहा है ।

अर्थ—पुस्तक, कमण्डल आदि के उठाने, धरने में यत्नाचार के जो परिणाम है, वह आदान निक्षेपण समिति है, ऐसा कहा है ।

प्रतिष्ठापन समिति का स्वरूप

गाहा—फासुगभूमिपदेसे, गूढे रहिबे परोपरोहेण । ६

उच्छाराविच्छागो, पइट्ठासमिदी हबे तस्स ॥४-१०-६५॥

अन्वयार्थ—(गूढे) एकान्त (परोपरोहेण रहिबे) अन्य द्वारा रोका न जाय, ऐसे (फासुगभूमिपदेसे) प्रासुक भूमि प्रदेश मे (उच्छाराविच्छागो) मल-मूत्रादि का त्याग करता है (तस्स) उस मुनि के (पइट्ठासमिदी) प्रतिष्ठापना समिति (हबे) होती है ।

अर्थ—एकान्त, अन्य द्वारा रोका न जाय, ऐसे प्रासुक भूमि-प्रदेश मे जो मल मूत्रादि का त्याग करता है, उस मुनि के प्रतिष्ठापना समिति होती है ।

व्यवहार मनोगुप्ति

गाहा — कालुस्समोहसज्जारगद्वोसावि असुहभावाणं ।

परिहारो मणुगुत्तो, व्यवहारणयेण परिकहिंवं ॥४-११-६६॥ यं

अन्वयार्थ— (कालुस्समोहसज्जारगद्वोसावि असुहभावाणं) कलुषता, मोह, सज्ञा, राग, द्वेषादि अशुभ भावों का (परिहारो) परिहार (व्यवहारणयेण) व्यवहार नय से (मणुगुत्तो) मनोगुप्ति (परिकहिंवं) कही है ।

अर्थ—कलुषता, मोह, सज्ञा, राग, द्वेषादि अशुभ भावों का परिहार व्यवहार नय से मनोगुप्ति कही है ।

गाहा—इत्थीराजचोरभक्तकहाविचयणस्स पावहेवुस्स । ॐ

परिहारो वचगुत्ती, असियाविणियत्तिवयणं वा ॥४-१२-६७॥ य

अन्वयार्थ—(पावहेवुस्स) पाप के कारण (इत्थीराजचोरभक्त-
कहाविचयणस्स) स्त्रीकथा, राजकथा, चोरकथा, भक्तकथा आदि रूप
वचनों का (परिहारो) परिहार (वा) अथवा (असियाविणियत्ति-
वयणं) असत्य की निवृत्ति वाले वचन (वचगुत्ती) वचन गुप्ति है ।

अर्थ—पाप के कारण स्त्री कथा, राजकथा, चोरकथा, भक्तकथा
आदि रूप वचनों का परिहार अथवा असत्य की निवृत्ति वाले वचन
वचनगुप्ति है ।

व्यवहार कायगुप्ति

गाहा--बंधण-छेदण-मारण-आकुञ्चण तह पसारणावीया ।

कायकिरिया जियस्ती, जिह्मिट्ठा कायगुप्ति त्ति ॥४-१३-६८॥

अन्वयार्थ—(बंधण-छेदण-मारण - आकुञ्चण) बन्धन, छेदन, मारण, आकुचन (तह) तथा (पसारणावीया) प्रसारण आदि (काय-किरियाजियस्ती) शरीर की क्रियाओं की निवृत्ति (कायगुप्ति) काय-गुप्ति (त्ति) ऐसा (जिह्मिट्ठा) कहा गया है ।

अर्थ -बन्धन, छेदन, मारण, आकुचन तथा प्रसारण आदि शरीर की क्रियाओं की निवृत्ति कायगुप्ति है, ऐसा कहा गया है ।

निश्चय मनोगुप्ति और वचनगुप्ति

गाहा—जा रायाबिणियसी, मजस्स जाणीहि तम्मज्जोगुत्ती ।

अस्सियाबिणियसी वा, मोणं वा होदि वदिगुत्ती ॥ ३

४-१४-६६॥

अन्वयार्थ—(मजस्स) मन से (जा) जो (रायाबिणियसी) रागादि की निवृत्ति (तं) उसे (मज्जोगुत्ती) मनोगुप्ति (जाणीहि) जानो (अस्सियाबिणियसी वा) असत्य आदि की निवृत्ति (मोणं वा) अथवा मौन (वदिगुत्ती) वचनगुप्ति (होदि) है ।

अर्थ—मन से जो रागादि की निवृत्ति, उसे मनोगुप्ति जानो । असत्य आदि की निवृत्ति अथवा मौन वचनगुप्ति है ।

निश्चय कायगुप्ति

माहा—कायकिरियाणियस्ती, काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती ।

५ हिंसादिणियस्ती वा, सरीरगुत्ति त्ति णिहिदुठा ॥४-१५-७०॥

अन्वयार्थ— (कायकिरियाणियस्ती) काय की क्रियाओ की निवृत्ति रूप (काउस्सग्गो) कायोत्सर्ग (सरीरगे गुत्ती) शरीर सम्बन्धी गुप्ति है (वा) अथवा (हिंसादिणियस्ती) हिंसादि की निवृत्ति (सरीरगुत्ति) शरीर गुप्ति है (त्ति) ऐसा (णिहिदुठा) कहा है ।

अर्थ—काय की क्रियाओ की निवृत्ति रूप कायोत्सर्ग शरीर सम्बन्धी गुप्ति है । अथवा हिंसादि की निवृत्ति शरीर गुप्ति है, ऐसा कहा है ।

अरहन्त परमेष्ठी का स्वरूप

गाथा—घणघादिकम्मरहिदा, केवलज्ञानादिपरमगुणसहिदा । यं ऊ
चोत्तिसअविसयजुत्ता, अरिहंता एरिसा होंति ॥

॥४-१६-७१॥

अन्वयार्थ—(घणघादिकम्मरहिदा) घाति कर्मों से रहित (केवल-
ज्ञानादिपरमगुणसहिदा) केवलज्ञान आदि उत्कृष्ट गुणों से युक्त
(चोत्तिसअविसयजुत्ता) चौत्तीस अतिशयों से युक्त (एरिसा) ऐसे
(अरिहंता) अहन्त (होंति) होते हैं ।

अर्थ—घाति कर्मों से रहित, केवलज्ञान आदि उत्कृष्ट गुणों से
युक्त और चौत्तीस अतिशयों से समुक्त ऐसे अहन्त होते हैं ।

गाथा—णट्ठट्ठकम्मबंधा, अट्ठमहागुणसमण्णिवा परमा ।

लोयगगठिवा णिच्चा, सिद्धा ते एरिसा होंति ॥

॥४-१७-७२॥

अन्वयार्थ—(णट्ठट्ठकम्मबंधा) आठ कर्मों के बन्ध को जिन्होंने नष्ट कर दिया है (अट्ठमहागुणसमण्णिवा) आठ महागुणों से समन्वित (परमा) उत्कृष्ट (लोयगगठिवा) लोकाग्र में स्थित (णिच्चा) नित्य (एरिसा) ऐसे (ते) वे (सिद्धा) सिद्ध (होंति) होते हैं ।

अर्थ—आठ कर्मों के बन्ध को जिन्होंने नष्ट कर दिया है, आठ महागुणों से समन्वित, उत्कृष्ट, लोकाग्र में स्थित और नित्य—ऐसे वे सिद्ध होते हैं ।

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

ग १ हा— पञ्चाचारसमगा, पञ्चब्रियदंतिवप्पणिहलणा ।

धीरा गुणगंभीरा, आयरिया एरिसा होंति ॥४-१८-७३॥

अन्वयार्थ— (पञ्चाचारसमगा) पञ्चाचार से पूर्ण (पञ्चब्रियदंति-
वप्पणिहलणा) पचेन्द्रिय रूपी हाथी के मद को निर्दलन करने वाले
(धीरा) धीर (गुणगंभीरा) गुणो से गंभीर (एरिसा) ऐसे
(आयरिया) आचार्य (होंति) होते हैं ।

अर्थ— पञ्चाचार से पूर्ण, पचेन्द्रिय रूपी हाथी के मद को
निर्दलन करने वाले, धीर और गुणो से गंभीर —ऐसे आचार्य
होते हैं ।

उपाध्याय परमेश्वरी का स्वरूप

गाथा—रयणस्तयसंजुता, जिणकहिबपयत्थवेसया सूर। २

२ निष्कंलभावसहिवा, उवज्झाया एरिसा होंति ॥४-१६-७४॥

अन्वयार्थ—(रयणस्तयसंजुता) रत्नत्रय से संयुक्त (जिणकहिब-पयत्थवेसया) जिनेन्द्र कथित पदार्थों का उपदेश करने वाले (सूर) उपसर्ग-परीषह के सहने में शूर (निष्कंलभावसहिवा) निष्कांक्षा भावना सहित (एरिसा) ऐसे (उवज्झाया) उपाध्याय (होंति) होते हैं ।

अर्थ—रत्नत्रय से संयुक्त, जिनेन्द्र कथित पदार्थों का उपदेश करने वाले, (उपसर्ग-परीषह के सहन करने में) शूर और निष्कांक्षा भावना सहित—ऐसे उपाध्याय होते हैं ।

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

गाहा—वावारविप्पमुक्का, खडब्बिहाराहणासयारत्ता ।

जिग्गंथा जिम्मोहा, साहू एदेरिसा होंति ॥४-२०-७५॥

अन्वयार्थ—(वावारविप्पमुक्का) व्यापार से विप्रमुक्त (खडब्बि-हाराहणासयारत्ता) चार प्रकार की आराधनाओं में सदा अनुरक्त (जिग्गंथा) निर्ग्रन्थ (जिम्मोहा) निर्मोह (एदेरिसा) ऐसे (साहू) साधु (होंति) होते हैं ।

अर्थ—(समस्त) व्यापार से विप्रमुक्त, चार प्रकार की आराधनाओं में सदा अनुरक्त, निर्ग्रन्थ, निर्मोह—ऐसे साधु होते हैं ।

व्यवहार चारित्र का उपसंहार

गाहा—एरिसयभावणाए, व्यवहारणयस्स होदि चारित्तं ।

णिच्छयणयस्स चरणं, एत्तो उड्डं पवक्खामि ॥४-२१-७६॥

अन्वयार्थ—(एरिसयभावणाए) ऐसी भावना में (व्यवहार-
णयस्स) व्यवहार नय की अपेक्षा में (चारित्तं) चारित्र (होदि)
होता है (णिच्छयणयस्स) निश्चय नय की अपेक्षा से (चरणं)
चारित्र (एत्तो) इसके (उड्डं) आगे (पवक्खामि) कहूँगा ।

अर्थ—ऐसी (पूर्वोक्त) भावना में व्यवहार नय की अपेक्षा से
चारित्र होता है । निश्चय नय की अपेक्षा में चारित्र इसके आगे
कहूँगा ।

इदि व्यवहारचारित्ताधियारो चउत्तो मुदक्खो समत्तो

परमत्थ पडिक्कमणाधियारो

सुद्धात्मा के सकल कर्तृत्व का अभाव है

गाहा—णाहं नारयभावो, तिरियत्थोमणुवदेवपज्जाओ ।

५ कत्ता ण हि कारयिदा, अणुमंता जेव कत्तीणं ॥५-१-७७॥

गाहा—णाहं मग्गणठाणो, णाहं गुणठाण जीवठाणो ण ।

५ कत्ता ण हि कारयिदा, अणुमंता जेव कत्तीणं ॥५-२-७८॥

गाहा—णाहं बालो बुद्धो, ण चेव तरुणो ण कारणं तेसि ।

५ कत्ता ण हि कारयिदा, अणुमंता जेव कत्तीणं ॥५-३-७९॥

गाहा—णाहं रागो दोसो, ण चेव मोहो ण कारणं तेसि ।

५ कत्ता ण हि कारयिदा, अणुमंता जेव कत्तीणं ॥५-४-८०॥

गाहा—णाहं कोहो माणो, ण चेव माया ण होमि लोहो हं ।

५ कत्ता ण हि कारयिदा, अणुमंता जेव कत्तीणं ॥५-५-८१॥

अन्वयार्थ— (अहं) मैं (नारयभावो) नारक पर्याय (तिरियत्थो-मणुवदेवपज्जाओ) तिर्यञ्च पर्याय, मानुष पर्याय, देव पर्याय (ण) नहीं हूँ (कत्ता ण हि कारयिदा) मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ (कत्तीणं) कर्त्ता का (अणुमंता जेव) अनुमोदक नहीं हूँ ।

(अहं) मैं (मग्गणठाणो ण) मार्गणा स्थान नहीं हूँ (अहं) मैं (गुणठाण) गुण स्थान (ण) नहीं हूँ (जीवठाणो ण) जीव स्थान नहीं हूँ (कत्ता ण हि कारयिदा) मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ (कत्तीणं) कर्त्ता का (अणुमंता जेव) अनुमोदक नहीं हूँ ।

(अहं बालो बुद्धो ण) मैं बाल, बृद्ध नहीं हूँ (ण चेव तरुणो) मैं तरुण नहीं हूँ (तेसि) उनका (कारणं ण) कारण भी नहीं हूँ (कत्ता ण हि कारयिदा) मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ (कत्तीणं) कर्त्ता का (अणुमंता जेव) अनुमोदक नहीं हूँ ।

(अहं) मैं (रागो दोसो ण) राग नहीं हूँ, द्वेष नहीं हूँ (ण चेव मोहो) न मोह ही हूँ (तेसि कारणं ण) न उनका कारण हूँ (कत्ता

ण हि कारयिदा) उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ (कत्तीणं) कर्त्ता का (अणुमंता णेव) अनुमोदक नहीं हूँ ।

(अहं) मैं (कोहो माणो ण) क्रोध नहीं हूँ, मान नहीं हूँ (ण चेव माया) न माया ही हूँ (अहं) मैं (लोहो ण होमि) लोभ नहीं हूँ (कर्त्ता ण हि कारयिदा) उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ (कत्तीणं) कर्त्ता का (अणुमंता णेव) अनुमोदक नहीं हूँ ।

अर्थ—मैं नारक पर्याय, तिर्यञ्च पर्याय, मानुष पर्याय और देव पर्याय नहीं हूँ । मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ, और कर्त्ता का अनुमोदक नहीं हूँ ।

मैं मार्गणा स्थान नहीं हूँ, गुण स्थान नहीं हूँ, जीव स्थान नहीं हूँ । मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ, न कर्त्ता का अनुमोदक ही हूँ ।

मैं बाल नहीं हूँ, बृद्ध नहीं हूँ, मैं तरुण नहीं हूँ, उनका कारण भी नहीं हूँ । मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ, न कर्त्ता का अनुमोदक ही हूँ ।

मैं राग नहीं हूँ, द्वेष नहीं हूँ, न मोह ही हूँ, न उनका कारण हूँ । मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ, न कर्त्ता का अनुमोदक ही हूँ ।

मैं क्रोध नहीं हूँ, मान नहीं हूँ, माया नहीं हूँ, न लोभ ही हूँ । मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ, न कर्त्ता का अनुमोदक ही हूँ ।

भेदविज्ञान से निश्चय चारित्र होता है

गाहा—एरिसभेदभासे, मज्झत्थो होवि तेण चारित्तं ।

तं दढकरणणिमित्तं, पडिक्कमणादी पवक्खामि ॥५-६-८२॥

अन्वयार्थ—(एरिसभेदभासे) ऐसा भेदाभ्यास होने पर (मज्झत्थो) जीव मध्यस्थ (होवि) हो जाता है (तेण) ऐसा होने पर (चारित्तं) चारित्र होता है (तं) उस चारित्र को (दढकरणणिमित्तं) दृढ़ करने के लिये (पडिक्कमणादी) मैं प्रतिक्रमण आदि को (पवक्खामि) कहूँगा ।

अर्थ—ऐसा भेदाभ्यास होने पर (जीव) मध्यस्थ हो जाता है । ऐसा होने पर चारित्र होता है । उस चारित्र को दृढ़ करने के लिये मैं प्रतिक्रमण आदि को कहूँगा ।

वचनमय प्रतिक्रमण का निराकरण

गाहा - मेतूण वयणरयणं, रागादीभाववारणं किञ्चा ।

अप्पाणं जो भायदि, तस्स दु होदि त्ति पडिकमणं ॥

॥५-७-८३॥

अन्वयार्थ (वयणरयणं) वचन रचना को (मेतूण) छोड़कर (रागादीभाववारणं) रागादि भावों का निवारण (किञ्चा) करके (जो) जो (अप्पाणं) आत्मा को (भायदि) ध्याता है (तस्स दु) उसके (पडिकमणं) प्रतिक्रमण (होदि त्ति) होता है ।

अर्थ—वचन-रचना को छोड़कर, रागादि भावों का निवारण करके जो आत्मा को ध्याता है, उसके प्रतिक्रमण होता है ।

आत्मा की आराधना ही प्रतिक्रमण है

गाथा—आराहणाइ बट्टि, भौत्तूण बिराहणं बिसेसेण ।

सो पडिकमणं बुण्णदि, पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥५-८-८४॥ ॐ

अन्वयार्थ—(बिराहणं) विराधना को (बिसेसेण) विशेष रूप से (भौत्तूण) छोड़कर जो (आराहणाइ) आराधना में (बट्टि) वर्तन करता है (सो) वह (पडिकमणं) प्रतिक्रमण (बुण्णदि) कहलाता है (जम्हा) क्योंकि वह (पडिकमणमओ) प्रतिक्रमणमय (हवे) होता है ।

अर्थ—विराधना को विशेष रूप से छोड़कर जो आराधना में वर्तन करता है, वह प्रतिक्रमण कहलाता है क्योंकि वह प्रतिक्रमण-मय होता है ।

निश्चय चात्र ही प्रतिक्रमण है

गाहा -- मेँतूण अणायारं, आयारे जो दु कुणबि धिरभावं ।
३ सो पडिकमणं बुच्छदि, पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥

॥५-६-८५॥

अन्वयार्थ--(जो दु) जो (अणायारं) अनाचार को (मेँतूण) छोडकर (आयारे) आचार मे (धिरभावं) स्थिर भाव (कुणबि) करता है (सो) वह (पडिकमणं) प्रतिक्रमण (बुच्छदि) कहलाता है (जम्हा) क्योंकि वह (पडिकमणमओ) प्रतिक्रमणमय (हवे) है ।

अर्थ—जो अनाचार को छोडकर आचार मे स्थिर भाव करता है, वह प्रतिक्रमण कहलाता है क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय होता है ।

जिनमार्ग में स्थिरता प्रतिक्रमण है

गाथा—उम्मग्गं परिचत्ता, जिणमग्गे ओ वु कुणवि चिरभावं ।

~~प्रत्यक्ष~~ सो पडिकमणं बुच्छवि, पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥

॥५-१०-८६॥

अन्वयार्थ— (ओ) जो (उम्मग्गं) उन्मार्ग को (परिचत्ता) छोड़कर (जिणमग्गे) जिन मार्ग में (चिरभावं) स्थिर भाव (कुणवि) करता है (सो) वह (पडिकमणं) प्रतिक्रमण (बुच्छवि) कहलाता है (जम्हा) क्योंकि वह (पडिकमणमओ) प्रतिक्रमणमय (हवे) होता है ।

अर्थ— जो उन्मार्ग को छोड़कर जिनमार्ग में स्थिर भाव करता है, वह प्रतिक्रमण कहलाता है क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय होता है ।

निःशल्य भाव मे परिणत साधु प्रतिक्रमण है

गाहा—मौत्तूण सल्लभाबं, णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि ।
सो पडिकमणं बुच्चदि, पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥

॥५-११-८७॥

अन्वयार्थ—(जो दु) जो (साहु) साधु (सल्लभाबं) शल्य भाव को (मौत्तूण) छोड़कर (णिस्सल्ले) निःशल्य स्वरूप मे (परिणमदि) परिणमन करता है (सो) वह साधु (पडिकमणं) प्रतिक्रमण (बुच्चदि) कहलाता है (जम्हा) क्योंकि वह (पडिकमणमओ) प्रतिक्रमणमय (हवे) होता है ।

अर्थ—जो साधु शल्य भाव को छोड़कर निःशल्य स्वरूप मे परिणमन करता है, वह (साधु) प्रतिक्रमण कहलाता है, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय होता है ।

त्रिगुप्तिगुप्त साधु प्रतिक्रमण है

गाथा—ब्रह्मा ह्यगुप्तिभावं, त्रिगुप्तिगुप्तो हवेति ओ साह ।
सो पडिकमणं बुद्धवि, पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥

॥५-१२-८८॥

अन्वयार्थ—(ओ) जो (साह) साधु-(अगुप्तिभावं हि) अगुप्ति
भाव को (ब्रह्मा) छोड़कर (त्रिगुप्तिगुप्तो) त्रिगुप्ति गुप्त (हवेति)
होता है (सो) वह साधु (पडिकमणं) प्रतिक्रमण (बुद्धवि) कह-
लाता है (जम्हा) क्योंकि वह (पडिकमणमओ) प्रतिक्रमणमय (हवे)
होता है ।

अर्थ—जो साधु अगुप्ति भाव को छोड़कर त्रिगुप्ति गुप्त होता
है, वह (साधु) प्रतिक्रमण कहलाता है क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय
होता है ।

धर्म और शुक्ल ध्यान में आरुह माषु प्रतिक्रमण है

गाहा—मौत्तूण अट्टरुहं, भाणं जो भावि धम्मसुक्कं वा ।

५२५२

सो पडिकमणं बुच्चवि, जिणवरणिहिट्ठ सुत्तेसु ॥५-१३-८६॥

अन्वयार्थ --(जो) जो (अट्टरुहं) आर्त्त और रौद्र ध्यान के (मौत्तूण) छोड़कर (धम्मसुक्कं वा) धर्म अथवा शुक्ल (भाणं) ध्यान को (भावि) ध्याता है (सो) वह (जिणवरणिहिट्ठसुत्तेसु) जिनेन्द्रदेव कथित सूत्रों में (पडिकमणं) प्रतिक्रमण (बुच्चवि) कहलाता है ।

अर्थ---जो आर्त्त और रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म अथवा शुक्ल ध्यान को ध्याता है, वह जिनेन्द्र कथित सूत्रों में प्रतिक्रमण कहलाता है ।

जीव ने सम्यक्त्व की भावना नहीं की

माहा—मिच्छत्तपहुविभावा, पुष्पं जीवेण भाविता सुहरं ।

य

सम्मत्तपहुविभावा, अभाविता होंति जीवेण ॥५-१४-१९॥ २

अन्वयार्थ—(पुष्पं) पूर्व में (जीवेण) जीव ने (सुहरं) चिर काल तक (मिच्छत्तपहुविभावा) मिथ्यात्व आदि भावों को (भाविता) भाया है (जीवेण) जीव ने (सम्मत्तपहुविभावा) सम्यक्त्व आदि भाव (अभाविता) नहीं भाये (होंति) हैं ।

अर्थ—पूर्व में जीव ने चिरकाल तक मिथ्यात्व आदि भावों को भाया है । जीव ने सम्यक्त्व आदि भाव नहीं भाये हैं ।

रत्नत्रय की भावना करने वाला प्रतिक्रमण स्वरूप है

गाथा---मिच्छावसंज्ञाणचरितं बह्वृण निरवसेसेण ।

३ सम्मत्तणाणचरणं, जो भावहिं सो पडिक्कमणं ॥५-१५-६१॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (मिच्छावसंज्ञाणचरितं) मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्र को (निरवसेसेण) सम्पूर्ण रूप से—सर्वथा (बह्वृण) त्यागकर (सम्मत्तणाणचरणं) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की (भावहिं) भावना करता है (सो) वह (पडिक्कमणं) प्रतिक्रमण स्वरूप कहलाता है ।

अर्थ—जो मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्र को सर्वथा त्याग कर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भावना करता है, वह प्रतिक्रमण स्वरूप कहलाता है ।

निश्चय उत्तमार्थं प्रतिक्रमण का स्वरूप

गाथा—उत्तमअट्ठं आवा, तम्मि ठिवा हणवि मुणिवरा कम्मं ।

तम्हा दु भाणमेव हि, उत्तमअट्ठस्स पडिकमणं ॥

॥५-१६-६२॥

अन्वयार्थ—(आवा) आत्मा ही (उत्तमअट्ठं) उत्तमार्थ है (तम्मि) उसमें (ठिवा) स्थित (मुणिवरा) मुनिराज (कम्मं) कर्मों का (हणवि) नाश करते हैं (तम्हा दु) इसलिये (भाणमेव हि) ध्यान ही (उत्तमअट्ठस्स) उत्तमार्थ (पडिकमणं) प्रतिक्रमण है ।

अर्थ—आत्मा ही उत्तमार्थ है । उसमें स्थित मुनिराज कर्मों का नाश करते हैं । इसलिये ध्यान ही उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है ।

ध्यान ही प्रतिक्रमण है

गाथा—भ्रान्तिनिशीतो साहू, परिचागं कुण्वि सव्वदोसाणं ।

तम्हा बु भानमेव हि, सव्वविचारस्स पडिकमणं ॥

॥५-१७-६३॥

अन्वयार्थ—(भ्रान्तिनिशीतो) ध्यान में लीन (साहू) साधु (सव्वदोसाणं) समस्त दोषों का (परिचागं) परित्याग (कुण्वि) करता है (तम्हा बु) इसलिये (भानमेव हि) ध्यान ही (सव्वविचारस्स) समस्त अतिचारों का (पडिकमणं) प्रतिक्रमण है ।

अर्थ—ध्यान में लीन साधु समस्त दोषों का परित्याग करता है । इसलिये ध्यान ही समस्त अतिचारों का प्रतिक्रमण है ।

व्यवहार प्रतिक्रमण की सफलता

गाहा—पडिकमणनामधेये, सुत्ते जह वण्णिदं पडिकमणं ।
तह णच्चा जो भावदि, तस्स तदा होदि पडिकमणं ॥

३

५-१८-६४

अन्वयार्थ—(पडिकमणनामधेये) प्रतिक्रमण नामक (सुत्ते) सूत्र मे (जह) जैसा (पडिकमणं) प्रतिक्रमण का स्वरूप (वण्णिदं) बताया है (तह) उसको वैसा ही (णच्चा) जानकर (जो) जो (भावदि) उसकी भावना करता है (तदा) तभी (तस्स) उसके (पडिकमणं) प्रतिक्रमण (होदि) होता है ।

अर्थ—प्रतिक्रमण नामक सूत्र मे प्रतिक्रमण का जैसा स्वरूप बताया है, उसको वैसा ही जानकर जो उसकी भावना करता है, तभी उसके प्रतिक्रमण होता है ।

इदि परमत्थ पडिकमणाधियारो पच्चमोसुदसुधो समत्तो

परमत्थपञ्चक्खाणाधियारो

निश्चय प्रत्याख्यान का स्वरूप

गाथा—मोत्तूण सयलजप्पमणागदसुहमसुहवारणं किञ्चा ।

अप्पाणं जो भायदि, पञ्चक्खाणं हवे तस्स ॥६-१-६५॥

अन्वयार्थ—(सयलजप्पं) समस्त जल्प—वचन विस्तार को (मोत्तूण) छोड़कर (अणागदसुहमसुहवारणं) भविष्य के शुभ और अशुभ का निवारण (किञ्चा) करके (जो) जो (अप्पाणं) आत्मा को (भायदि) ध्याता है (तस्स) उसके (पञ्चक्खाणं) प्रत्याख्यान (हवे) होता है ।

अर्थ—समस्त वचन विस्तार को छोड़कर और भविष्य के शुभ-अशुभ का निवारण करके जो आत्मा का ध्यान करता है, उसके प्रत्याख्यान होता है ।

अनन्त चतुष्टयात्मक आत्मा का ध्यान

गाथा—केवलज्ञानसहायो, केवलदंसनसहाय सुहृमद्भ्यो ।
केवलसत्तिसहायो, सोहं इदि चित्तदे ज्ञानी ॥६-२-६६॥ ८

अन्वयार्थ—(केवलज्ञानसहायो) केवलज्ञान स्वभाव वाला (केवलदंसनसहाय) केवलदर्शन स्वभाव वाला (सुहृमद्भ्यो) केवल मुखमय स्वभाव वाला (केवलसत्तिसहायो) केवल शक्ति-वीर्य स्वभाव वाला (सोहं) वह मैं हूँ (इदि) इस प्रकार (ज्ञानी) ज्ञानी (चित्तदे) विचार करता है ।

अर्थ—केवलज्ञानस्वभाव वाला, केवलदर्शनस्वभाव वाला, केवल मुखमयस्वभाव वाला और केवल वीर्य स्वभाव वाला वह मैं हूँ, इस प्रकार ज्ञानी विचार करता है ।

ज्ञानी निब्रभाव का विचार करता है

गच्छेत्

गाहा—णियभावं ण वि मुञ्चदि, परभावं णेव गिण्हवे केइं । ✓

जाणदि पस्सदि सव्वं, सोहं इवि चित्ते जाणी ॥ ए

॥६-३-६७॥

अन्वयार्थ—जो (णियभावं) निज भाव को (ण वि मुञ्चदि) नहीं छोड़ता (केइं परभावं) किसी परभाव को (णेव गिण्हवे) ग्रहण नहीं करता (सव्वं) सबको (जाणदि पस्सदि) जानता, देखता है (सोहं) वह मैं हूँ (इदि) इस प्रकार (जाणी) ज्ञानी (चित्ते) विचार करता है ।

अर्थ—जो निज भाव को नहीं छोड़ता, किसी भी परभाव को ग्रहण नहीं करता (और) सबको जानता-देखता है, वह मैं हूँ, इस प्रकार ज्ञानी विचार करता है ।

ज्ञानी बन्धरहित आत्मा मे स्थिर भाव करता है

गाथा—पयडिट्ठिअणुभागप्पवेसबंघेहिबज्जिदो अप्पा ।

सोहं इवि चित्तिज्जो, तत्थेव य कुणवि धिरभावं ॥६-४-६८॥

अन्वयार्थ—(पयडिट्ठिअणुभागप्पवेसबंघेहिबज्जिदो) प्रकृति-
बन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध से रहित (अप्पा) जो
आत्मा है (सोहं) वह मैं हूँ (इवि) ऐसा (चित्तिज्जो) विचार करता
हुआ—ज्ञानी (तत्थेव य) उसी मे (धिरभावं) स्थिर भाव (कुणवि)
करता है ।

अर्थ— प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध
से रहित जो आत्मा है, वह मैं हूँ, इस प्रकार विचार करता हुआ
(ज्ञानी) उसी मे स्थिर भाव करता है ।

चित्तेज्जो म्मे न्हि

समस्त विभावो के त्याग की विधि

अनुष्टुप—ममत्ति परिवर्ज्यामि, निम्नमत्तिमुवट्ठवो ।

आलम्बणं च मे आदा, अवसेसं च वोसरे ॥६-५-६६॥

अन्वयार्थ—मैं (ममत्ति) ममत्व को (परिवर्ज्यामि) छोड़ता हूँ और (निम्नमत्ति) निर्ममत्व में (उवट्ठवो) स्थित रहता हूँ (च) और (आदा) आत्मा (मे) मेरा (आलम्बणं) आलम्बन है (च) और (अवसेसं) अवशेष को (वोसरे) छोड़ता हूँ ।

अर्थ—मैं ममत्व को छोड़ता हूँ और निर्ममत्व में स्थित होता हूँ । आत्मा मेरा आलम्बन है और अवशेष को छोड़ता हूँ ।

सर्वत्र आत्मा उपादेय है

गाथा—आदा खू मज्झ जाणे, आदा मे वंसणे चरित्ते य ।

आदा पच्चक्खाणे, आदा मे संवरे जोगे ॥६-६-१००॥

अन्वयार्थ—(खू) वास्तव मे (मज्झ) मेरे (जाणे) ज्ञान मे (आदा) आत्मा है (मे) मेरे (वंसणे) दर्शन मे (य) और (चरित्ते) चारित्र मे (आदा) आत्मा है (पच्चक्खाणे) प्रत्याख्यान मे (आदा) आत्मा है (मे) मेरे (संवरे) सवर मे (जोगे) और योग मे (आदा) आत्मा है ।

अर्थ—वाम्भव मे मेरे ज्ञान मे आत्मा है, मेरे दर्शन और चारित्र मे आत्मा है, प्रत्याख्यान मे आत्मा है, मेरे सवर और योग मे आत्मा है ।

जीव सर्वत्र असहाय है

गाहा एगो य मरदि जीवो, एगो य जीवदि सयं ।

एगस्स जादि मरणं, एगो सिज्झदि णिरयो ॥६-७-१०१॥

अन्वयार्थ—(एगो य जीवो) जीव अकेला (मरदि) मरता है (य) और (सयं) स्वयं (एगो) अकेला (जीवदि) जीता है (एगस्स) अकेले का (मरणं) मरण (जादि) होता है (णिरयो) रज रहित होकर (एगो) अकेला (सिज्झदि) सिद्ध होता है ।

अर्थ जीव अकेला मरता है और स्वयं अकेला जीता है; अकेले का मरण होता है और रजरहित होकर अकेला सिद्ध होता है ।

ज्ञानी की एकत्व भावना

अनुष्टुप—एगो मे सासबो अप्पा, जाणबंसणसक्खणो ।

सेसा मे बाहिरा भावा, सब्बे संजोगसक्खणा ॥६-८-१०२॥

अन्वयार्थ—(मे) मेरा (अप्पा) आत्मा (एगो) एक है
(सासबो) शाश्वत है (जाणबंसणसक्खणो) ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला
है (मे) मेरे (सेसा) शेष (भावा) भाव (बाहिरा) बाह्य है (सब्बे)
वे सब (संजोगसक्खणा) संयोग लक्षण वाले हैं ।

अर्थ—मेरा आत्मा एक है, शाश्वत है, ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला
है । मेरे शेष भाव मुझसे बाह्य हैं, वे सब संयोग लक्षण वाले (संयोग
जन्य) हैं ।

आत्मगत दोषों के परिहार का उपाय

गाथा—जं किञ्चि मे दुष्चरित्तं, सव्वं तिबिहेण वोसरे ।

सामाइयं तु तिबिहं, करेमि सव्वं निरायारं ॥६-६-१०३॥

अन्वयार्थ—(मे) मेरा (जं किञ्चि) जो कुछ भी (दुष्चरित्तं) दुश्चारित्र है (सव्वं) उस सबको (तिबिहेण) त्रिविध करणों से (वोसरे) छोड़ता हूँ (तु) और (तिबिहं) तीन प्रकार की (सामा-इयं) सामायिक-चारित्र (सव्व) उस सबको (निरायारं) शुद्ध-निर्विकल्प (करेमि) करता हूँ ।

अर्थ—मेरा जो कुछ भी दुश्चारित्र है, उस सबको मैं त्रिविध (करणों से-मन, वचन, काय से) छोड़ता हूँ और तीन प्रकार की सामायिक (चारित्र-सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि) उस सबको शुद्ध (निर्विकल्प) करता हूँ ।

अन्तर्मुख साधु की परम भावना

अनुष्टुप—सम्मं मे सख्खभूदेसु, वेरं मज्झं ण केणवि ।

आसाए वोसरित्ताणं, समाहि पडिवज्जदे ॥६-१०-१०४॥

अन्वयायं—(सख्खभूदेसु) सभी जीवों के प्रति (मे) मेरा (सम्मं) समता भाव है (केणवि) किसी के साथ (मज्झं) मेरा (वेरं) वैर (ण) नहीं है (णं) वस्तुतः मैं (आसाए) आशा को (वोसरित्ता) छोड़कर (समाहि) समाधि को (पडिवज्जदे) प्राप्त करता हूँ ।

अर्थ—सभी जीवों के प्रति मेरा समता भाव है, किसी के साथ मेरा वैर नहीं है । वस्तुतः मैं आशा को छोड़कर समाधि को प्राप्त करता हूँ ।

निश्चय प्रत्याख्यान के योग्य जीव का स्वरूप

अनुष्टुप—**णिकसायस्स बंतस्स, सूरस्स ववसायिणो ।**

संसारभयभीवस्स, पच्चक्खाणं मुहं हवे ॥६-११-१०५॥

अन्वयार्थ—(णिकसायस्स) जो कषाय रहित है (बंतस्स) इन्द्रियों का दमन करने वाला है (सूरस्स) परीषह-उपसर्ग पर विजय प्राप्त करने में शूर है (ववसायिणो) निश्चय परमतप करने में उद्यमी है (संसारभयभीवस्स) संसार के भय से भयभीत है, उसके (मुहं पच्चक्खाणं) सुखमय प्रत्याख्यान (हवे) होता है ।

अर्थ—जो कषाय रहित है, इन्द्रियों का दमन करने वाला है, (परीषह-उपसर्ग पर विजय प्राप्त करने में) शूरवीर है, (निश्चय परम तप करने में) उद्यमी है, संसार के भय से भयभीत है, उसके सुखमय प्रत्याख्यान होता है ।

निश्चय प्रत्याख्यानधिकार का उपसंहार

गाथा—एवं भेदभासं, जो कुब्बवि जीवकम्मणो णिच्चं ।

पच्चक्खाणं सक्कदि, धरिदुं सो संजवो णियमा ॥

॥६-१२-१०६॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (णिच्चं) सदा (जीवकम्मणो) जीव और कर्म का (एवं) इस प्रकार (भेदभासं) भेदाभ्यास (कुब्बवि) करता है (सो) वह (संजवो) सयत (णियमा) नियम से (पच्चक्खाणं) प्रत्याख्यान (धरिदुं) धारण करने के लिये (सक्कदि) समर्थ है—धारण कर सकता है ।

अर्थ—जो सदा इस प्रकार जीव और कर्म का भेदाभ्यास करता है, वह सयत नियम से प्रत्याख्यान धारण कर सकता है ।

इदि परमत्थपच्चक्खाणाधियारो छट्ठी सुदसंधो समस्तो

परमालोचनाधियारो

निश्चय आलोचना का स्वरूप

गाहा—णोकम्मकम्मरहिदं, विहावगुणपज्जयेहि वदिरित्तं ।

अप्पाणं जो भायदि, समणस्सालोयणं होदि ॥

॥७-१-१०७॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (णोकम्मकम्मरहिदं) नोकर्म और कर्म से रहित—और (विहावगुणपज्जयेहि) विभाव गुण और पर्यायो से (वदिरित्तं) भिन्न (अप्पाणं) आत्मा को (भायदि) ध्याता है (समणस्स) उस श्रमण के (आलोयणं) आलोचना (होदि) होती है ।

अर्थ—जो नोकर्म और कर्म से रहित और विभाव गुण और पर्यायो से भिन्न आत्मा को ध्याता है, उस श्रमण (मुनि) के आलोचना होती है ।

आलोचना के लक्षण भेद

गाहा—आलोयणमालुंछणमवियडीकरणं य भावसुद्धी य ।

चउविहमिह परिकहिदं, आलोयणलक्खणं समये ॥ १७-२-१०८॥

अन्वयार्थ—(इह) यहां (समये) आगम मे (आलोयणं) आलो-
चन (आलुंछण) आलुछन (अवियडीकरणं) अविकृतिकरण (य)
और (भावसुद्धी) भावशुद्धि—इस प्रकार (चउविहं) चार प्रकार
(आलोयणलक्खणं) आलोचना का लक्षण (परिकहिदं) कहा
गया है ।

अर्थ—यहा आगम मे आलोचना, आलुछन, अविकृतिकरण और
भावशुद्धि—ऐसे चार प्रकार का आलोचना का लक्षण कहा गया है ।

परम समता भाव आलोचना है

गाहा—जो पस्सदि अप्पाणं, समभावे संठवित्तु परिणामं ।

आलीयणमिदि जाणह, परमजिणंदस्स उवएसं ॥

॥७-३-१०६॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (परिणामं) परिणाम को (समभावे) समभाव में (संठवित्तु) स्थापित करके (अप्पाणं) आत्मा को (पस्सदि) देखता है (आलीयणं) वह आलोचना है (इदि) ऐसा परमजिणंदस्स) परम जिनेन्द्र का (उवएसं) उपदेश (जाणह) जानो ।

अर्थ—जो परिणाम को समभाव में स्थापित करके आत्मा को देखता है, वह आलोचना है, ऐसा परम जिनेन्द्र का उपदेश जानो ।

निज स्वाधीन भाव आलुछन है

गाहा—कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमतथो सकीयपरिणामो ।

साहीणो समभावो, आलुछणमिषि समुद्दिठं ॥७-४-११०॥

अन्वयार्थ—(कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमतथो) कर्मरूपी वृक्ष के मूल को नष्ट करने में समर्थ (समभावो) समभाव रूप (साहीणो) स्वाधीन (सकीयपरिणामो) निज आत्म परिणाम (आलुछणं) आलुछन (इवि) इस नाम से (समुद्दिठं) कहा गया है ।

अर्थ—कर्म रूपी वृक्ष के मूल को नष्ट करने में समर्थ समता भाव रूप स्वाधीन निज आत्मपरिणाम आलुछन (इस नाम से) कहा गया है (उसे आलुछन कहा है) ।

माध्यस्थ्य भाव अविकृतिकरण है

गाथा—कम्मादो अप्पाणं, भिण्णं भावेद्दि विमलसुणणिसयं ।

मउभत्थभावणाएऽवियडीकरणं त्ति विण्णेयं ॥

॥७-५-१११॥

अन्वयार्थ—जो (मउभत्थभावणाए) माध्यस्थ्य भावना मे (कम्मादो) कर्मों से (भिण्णं) भिन्न (विमलसुणणिसयं) निर्मल गुणों की निधान (अप्पाणं) आत्मा की (भावेद्दि) भावना करता है— उसे (अवियडीकरणं) अविकृतिकरण (त्ति) ऐसा (विण्णेयं) जानना चाहिये ।

अर्थ—जो माध्यस्थ्य भावना मे कर्मों से भिन्न और निर्मल गुणों की निधान आत्मा की भावना करता है, उसे अविकृतिकरण जानना चाहिये ।

निष्काम भाव से भाव शुद्धि होती है

गाथा—महमाणमायलोहबिबन्जितभावो बु भावसुद्धि त्ति ।
परिकहिदं भव्वाणं, लोयालोयप्परिसीहि ॥ ५१ ॥

॥७-६-११२॥

अन्वयार्थ—(महमाणमायलोहबिबन्जित भावो बु) मद-काम परिणाम, मान, माया और लोभ से रहित भाव (भावसुद्धि) भाव-शुद्धि है (त्ति) इस प्रकार (लोयालोयप्परिसीहि) लोकालोक के देखने वालो ने (भव्वाणं) भव्यो के लिये (परिकहिदं) कहा है ।

अर्थ—कामपरिणाम, मान, माया और लोभ से रहित भाव भाव शुद्धि है, ऐसा लोकालोक के देखने वालो ने भव्यो के लिये कहा है ।

इदि परमालोयणाघियारो सत्तमो सुदत्तधो समत्तो

णिच्छयपायच्छित्ताधियारो

निश्चय प्रायश्चित्त का स्वरूप

गाहा-- वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो करणणिग्गहो भावो ।

सो हवदि पायच्छित्तं, अणवरयं चेष कावब्बो ॥

॥८-१-११३॥

अन्वयार्थ (वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो) व्रत, समिति, शील, सयम रूप परिणाम- और (करणणिग्गहो) इन्द्रियो के निग्रह रूप (भावो) भाव (सो) वह (पायच्छित्तं) प्रायश्चित्त (हवदि) है (च) और वह (अणवरयंएव) निरन्तर ही (कावब्बो) करना चाहिये ।

अर्थ -- व्रत, समिति, शील, सयमरूप परिणाम और इन्द्रियो के निग्रह रूप भाव—वह प्रायश्चित्त है । वह निरन्तर करना चाहिये ।

आत्म गुणो का चिन्तन प्रायश्चित्त है

गाहा — कोहादिसगबभावक्खयपट्टविभावणाए णिग्गहणं ।

पायच्छित्तं भणिबं णियगुणचित्ता य णिच्छयदो ॥८-२-११४।

अन्वयार्थ — (कोहादिसगबभावक्खयपट्टविभावणाए) क्रोध आदि स्वकीय भावो के क्षयादि की भावना मे (णिग्गहणं) वर्तना (य) और (णियगुणचित्ता) निज गुणो का चिन्तन करना (णिच्छयदो) निश्चय मे (पायच्छित्तं) प्रायश्चित्त (भणिबं) कहा गया है ।

अर्थ—क्रोध आदि स्वकीय भावो (विभावो) के क्षयादि की भावना मे वर्तना और निज गुणो का चिन्तन करना निश्चय से प्रायश्चित्त कहा गया है ।

कषाय-विजय का उपाय

गाथा—कोहं खमया माणं, समद्वेणज्जवेण मायं च ।

संतोसेण य लोहं, जयदि लु ए चउविहकसाए ॥८-३-११५॥

अन्वयार्थ—(कोहं) क्रोध को (खमया) क्षमा से (माणं) मान को (समद्वेण) निज मार्दव से (च) और (मायं) माया को (अज्जवेण) अर्जव से (य) और (लोहं) लोभ को (संतोसेण) सन्तोष से (ए चउविहकसाए) इन चार प्रकार की कषायों को—योगी (लु) वास्तव में (जयदि) जीतता है ।

अर्थ—क्रोध को क्षमा से, मान को निज मार्दव से, माया को अर्जव से और लोभ को सन्तोष से—इन चार प्रकार की कषायों को (योगी) वास्तव में जीतता है ।

आत्म-ज्ञान प्रायश्चित्त है

गाथा—उत्किट्ठो जो बोहो, णाणं तस्सेव अप्पणो चित्तं ।

जो धरवि मुणो निब्बं पायच्छित्तं हवे तस्स ॥ ३

॥८-४-११६॥

अन्वयार्थ—(तस्सेव) उसी (अप्पणो) आत्मा का (जो) जो (उत्किट्ठो) उत्कृष्ट (बोहो) ज्ञान-बोध (णाणं) ज्ञान (चित्तं) चित्त-उसे (जो मुणो) जो मुनि (निब्बं) सदा (धरवि) धारण करता है (तस्स) उसके (पायच्छित्तं) प्रायश्चित्त (हवे) होता है ।

अर्थ—उसी आत्मा का जो उत्कृष्ट बोध, ज्ञान अथवा चित्त-उसे जो मुनि सदा धारण करता है, उसके प्रायश्चित्त होता है ।

परम तप प्रायश्चित्त है

गाहा—किं बहुणा भणिदेण दु वरतवचरणं महेसिणं सव्वं ।
पायच्छित्तं जाणह, अण्येकम्माण खयहेहु ॥

॥८-५-११७॥

अन्वयार्थ (बहुणा) बहुत (भणिदेण दु) कहने से (किं) क्या (अण्येकम्माण) अनेक कर्मों के (खयहेहु) क्षय का कारण (महेसिणं) महर्षियो का (सव्वं) समस्त (वरतवचरणं) उत्तम तपश्चरण—उमे (पायच्छित्तं) प्रायश्चित्त (जाणह) जानो ।

अर्थ - बहुत कहने से क्या अनेक कर्मों के क्षय का कारण महर्षियो का समस्त उत्तम तपश्चरण—उमे प्रायश्चित्त जानो ।

शुद्धात्मस्वरूप में लीनता रूप तप प्रायश्चित्त है

गाहा—नृताणंतभवेण समज्जिबसुहअसुहकम्मसंबोहो ।

तवचरणेण विणस्सवि, पायच्छित्तं तवं तम्हा ॥८-६-११८॥

अन्वयार्थ—(नृताणंतभवेण) अनन्तानन्त भवो द्वारा (समज्जिब-सुहअसुहकम्मसंबोहो) उपाजित शुभाशुभ कर्म-समूह (तवचरणेण) तपश्चरण से (विणस्सवि) नष्ट हो जाता है (तम्हा) इसलिये (तवं) तप (पायच्छित्तं) प्रायश्चित्त है ।

अर्थ—अनन्तानन्त भवो द्वारा उपाजित शुभाशुभ कर्म-समूह तपश्चरण से नष्ट हो जाता है । इसलिये तप प्रायश्चित्त है ।

ध्यान ही प्रायश्चित्त है

गाहा—अप्पसरूवालंघणभावेण दु सव्वभावपरिहारं ।

सककि कावुं जीवो, तम्हा भाणं हवे सव्वं ॥८-७-११६॥

अन्वयार्थ—(जीवो) जीव (अप्पसरूवालंघणभावेण दु) आत्म-
स्वरूप के आलम्बन के भाव से (सव्वभावपरिहारं) समस्त भावों
का परिहार (कावुंसककि) कर सकता है (तम्हा) इसलिये (भाणं)
ध्यान ही (सव्वं) प्रायश्चित्त आदि सब कुछ (हवे) होता है ।

अर्थ—जीव आत्मस्वरूप के आलम्बन के भाव से समस्त भावों
का परिहार कर सकता है । इसलिये ध्यान ही प्रायश्चित्त आदि
सब कुछ है ।

शुद्ध निश्चय नियम का स्वरूप

गाहा—सुहअसुहवयणरयणं, रायादीभाववारणं किञ्चा ।

अप्याणं जो भ्यायवि, तस्स दु नियमं हवे नियमा ॥८-८-१२०॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (सुहअसुहवयणरयणं) शुभ और अशुभ वचन की रचना—और (रायादीभाववारणं) रागादि भावों का निवारण (किञ्चा) करके (अप्याणं) आत्मा को (भ्यायवि) ध्याता है (तस्स दु) उसके तो (नियमा) नियम से (नियमं) नियम (हवे) होता है ।

अर्थ—जो शुभ और अशुभ वचन की रचना और रागादि भावों का निवारण करके आत्मा को ध्याता है, उसके तो नियम से (निश्चय से) नियम होता है ।

निश्चय कायोत्सर्ग का स्वरूप

गाहा कायादीपरदब्धे, चिरभावं परिहरत्सु अप्पाण ।

तस्स हवे तणुसग्गं, जो भाय्यादि णिव्विअप्पेण ॥८-६-१२१॥

अन्वयार्थ -- (कायादीपरदब्धे) शरीर आदि परद्रव्यो मे (चिर-
भावं) स्थिर भाव को (परिहरत्सु) छोडकर (जो) जो (अप्पाणं)
आत्मा को (णिव्विअप्पेण) निर्विकल्प रूप से (भाय्यादि) ध्याता है
(तस्स) उसके (तणुसग्गं) कायोत्सर्ग (हवे) होता है ।

अर्थ—शरीर आदि परद्रव्यो मे स्थिर भाव को छोडकर जो
आत्मा को निर्विकल्प रूप से ध्याता है, उसके कायोत्सर्ग होता है ।

इदि णिच्छयपायच्छित्ताधियारो अट्टमो सुदब्धो समत्तो

परमसमाहि अधियारो

परम समाधि का स्वरूप

गाथा—वयणोच्चारणकिरियं, परिचस्ता वीदरायभावेण ।

जो भायवि अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स ॥६-१-१२२॥

अन्वयार्थ—(वयणोच्चारणकिरियं) वचनोच्चारण की क्रिया को (परिचस्ता) छोड़कर (जो) जो (वीदरायभावेण) वीतराग भाव से (अप्पाणं) आत्मा को (भायवि) ध्याता है (तस्स) उसके (परमसमाही) परम समाधि (हवे) होती है ।

अर्थ—वचनोच्चारण की क्रिया को छोड़कर जो वीतराग भाव से आत्मा को ध्याता है, उसके परम समाधि होती है ।

परम समाधि का लक्षण

गाहा—संजमणियमतवेण बु, धम्मज्झाणेण सुक्कभाणेण ।

जो भायदि अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स ॥६-२-१२३॥

अन्वयार्थ—(संजमणियमतवेण) सयम, नियम, तप से (बु)
और (धम्मज्झाणेण) धर्म ध्यान (सुक्कभाणेण) शुक्ल ध्यान से
(जो) जो (अप्पाणं) आत्मा को (भायदि) ध्याता है (तस्स) उसके
(परमसमाही) परम समाधि (हवे) होती है ।

अर्थ—सयम, नियम, तप से और धर्म ध्यान-शुक्ल ध्यान से जो
आत्मा को ध्याता है, उसके परम समाधि होती है ।

समता से रहित श्रमण की सब क्रिया निष्फल हैं

गाथा—किं काहृदि वनवासो, कायक्लेशो विचिस्तउपवासो ।

अब्भयजमौणपट्टदी, समबारहिवस्स समणस्स ॥ य

॥६-३-१२४॥

अन्वयार्थ—(समबारहिवस्स) समता से रहित (समणस्स) श्रमण को (वनवासो) वनवास (कायक्लेशो) काय क्लेश (विचिस्तउपवासो) नाना प्रकार के उपवास (अब्भयजमौणपट्टदी) अध्ययन, मौन आदि (किं) क्या लाभ (काहृदि) कर सकते हैं ।

अर्थ—समता से रहित श्रमण को वनवास, काय क्लेश, नाना प्रकार के उपवास, अध्ययन और मौन क्या (लाभ) कर सकते हैं ।

जितेन्द्रिय से सामायिक स्थायी होती है

अनुष्टुप—विरबोसम्बसावज्जे, तिगुत्तो पिहिंविदिओ ।

तस्स सामाइणं ठाई, इदिक्केवसिसासणे ॥६-४-१२५॥

अन्वयार्थ—(सम्बसावज्जे) समस्त सावद्यो से (विरबो) विरत (तिगुत्तो) तीन गुप्ति वाला (पिहिंविदिओ) पिहितेन्द्रिय (तस्स) उसके (सामाइणं) सामायिक (ठाई) स्थायी होता है (इदि) इस प्रकार (क्केवसिसासणे) केवली के शासन में कहा है ।

अर्थ—जो समस्त सावद्यो से विरत है, तीन गुप्ति वाला है, पिहितेन्द्रिय (जितेन्द्रिय) है, उसके सामायिक स्थायी होता है, इस प्रकार केवली-शासन में कहा है ।

समता भावी के सामायिक स्थायी होती है

अनुष्टुप—जो समो सध्वमूवेसु, चावरेसु तसेसु वा ।

तस्स सामाहगं ठाई, इवि केवलिसासणे ॥६-५-१२६॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (चावरेसु) स्थावर (वा) अथवा (तसेसु) त्रस (सध्वमूवेसु) समस्त जीवों के प्रति (समो) समता भाव रखता है (तस्स) उसके (सामाहगं) सामायिक (ठाई) स्थायी होता है (इवि) ऐसा (केवलिसासणे) केवली के शासन में कहा है ।

अर्थ—जो स्थावर अथवा त्रस—समस्त जीवों के प्रति समता भाव रखता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन में कहा है ।

सन्निहित आत्मा के सामायिक स्थायी होती है

अनुष्टुप— जस्स सण्हिबो अप्पा, संजमे णियमे तवे ।

तस्स सामाइगं ठाई, इवि केवल्लिसासणे ॥६-६-१२७॥

अन्वयार्थ—(संजमे) समय मे (णियमे) नियम मे (तवे) तप मे (जस्स) जिसका (अप्पा) आत्मा (सण्हिबो) निकट रहता है (तस्स) उसका (सामाइगं) सामायिक (ठाई) स्थायी होता है (इवि) ऐसा (केवल्लिसासणे) केवली के शासन में कहा है ।

अर्थ—समय मे, नियम मे और तप मे जिसका आत्मा निकट रहता है, उसका सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन मे कहा है ।

बीतराग के सामायिक स्थायी होती है

अनुष्टुप—जस्स रागो दु दोसो दु, वियुडि ण जणेदि दु । म
तस्स सामाद्दगं ठाई, इदि केवलीसासणे ॥६-७-१२८॥

अन्वयार्थ - (जस्स) जिसके (रागो दु) राग और (दोसो दु) द्वेष रूप (वियुडि) विकार (ण दु जणेदि) उत्पन्न नहीं होता (तस्स) उसके (सामाद्दगं) सामायिक (ठाई) स्थायी होता है (इदि) ऐसा (केवलीसासणे) केवली के शासन में कहा है ।

अर्थ—जिसके राग और द्वेषरूप विकार उत्पन्न नहीं होता, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन में कहा है ।

आर्त-रौद्र ध्यान के त्याग से सामायिक स्थायी होता है

अनुष्टुप—जो बु अट्टं च रहं च, भाणं वज्जेवि निच्छसा ।

तस्स सामाइगं ठाई, इवि केवलिसासणे ॥६-८-१२६॥

अन्वयार्थ—(जो बु) जो (अट्टं च) आर्त (रहं च) और रौद्र (भाणं) ध्यान को (निच्छसा) सदा (वज्जेवि) छोड़ता है (तस्स) उसके (सामाइगं) सामायिक (ठाई) स्थायी होता है (इवि) ऐसा (केवलिसासणे) केवली के शासन में कहा है ।

अर्थ जो आर्त और रौद्र ध्यान को सदा छोड़ता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली शासन में कहा है ।

पुण्य और पाप के त्याग से सामायिक स्थायी होती है

अनुष्टुप—जो हु पुण्यं च पापं च, भावं बज्जेदि निच्छसा ।

तस्स सामाद्वगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥

॥६-६-१३०॥

अन्वयार्थ—(जो हु) जो (पुण्यं च) पुण्य और (पापं च) पाप (भावं) भाव को (निच्छसा) सदा (बज्जेदि) त्यागता है, (तस्स) उसके (सामाद्वगं) सामायिक (ठाई) स्थायी होता है (इदि) ऐसा (केवलिसासणे) केवली के शासन में कहा है ।

अर्थ—जो पुण्य और पाप भाव को सदा त्यागता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन में कहा है ।

नोकषाय के त्याग से सामायिक स्थायी होती है

अनुष्टुप—जो बु हस्सं रविं सोगं, अरविं वज्जेदि निच्चसा ।

तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥

॥६-१०-१३१॥

अन्वयार्थ—(जो बु) जो (हस्सं) हास्य (रविं) रति (सोगं) शोक (अरविं) अरति को (निच्चसा) सदा (वज्जेदि) छोड़ता है (तस्स) उसके (सामाइगं) सामायिक (ठाई) स्थायी होता है (इदि) ऐसा (केवलिसासणे) केवली के शासन में कहा है ।

अर्थ—जो हास्य, रति, शोक और अरति को सदा त्यागता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन में कहा है ।

नीकषाय के स्थान से सामायिक स्थायी होता है

अनुष्टुप—जो दुर्गच्छा भयं वेदं, सर्वं वज्जेवि निच्छसा ।

तस्स सामाह्मं ठाई, इवि केवलिसासणे ॥

॥६-११-१३२॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (दुर्गच्छा) जुगुप्सा (भयं) भय (सर्वं वेदं) समस्त वेदों—स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुसक वेद को (निच्छसा) सदा (वज्जेवि) छोड़ता है (तस्स) उसके (सामाह्मं) सामायिक (ठाई) स्थायी होता है (इवि) ऐसा (केवलिसासणे) केवली के शासन में कहा है ।

अर्थ—जो जुगुप्सा, भय और समस्त वेदों को (स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुसक वेद) सदा छोड़ता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन में कहा है ।

धर्म और शुक्ल ध्यान से सामायिक स्थायी होता है

अनुष्टुप—जो बु धम्मं च सुक्कं च, भाणं भाएदि निच्चसा ।

तस्स सामाहगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥

॥६-१२-१३३॥

अन्वयार्थ—(जो बु) जो (धम्मं च) धर्म (सुक्कं च) और शुक्ल (भाणं) ध्यान को (निच्चसा) नित्य ही (भाएदि) ध्याता है (तस्स) उसके (सामाहगं) सामायिक (ठाई) स्थाई होता है (इदि) ऐसा (केवलिसासणे) केवली के शासन में कहा है ।

अर्थ—जो धर्म और शुक्ल ध्यान को नित्य ही ध्याता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन में कहा है ।

इदि परमममाहि अघियारो णवमो सुदक्खो समत्तो

परमभक्ति अधियारो

रत्नत्रय की भक्ति निश्चय निर्वाण-भक्ति है

गाहा—सम्मत्तणाणचरणे, जो भत्ति कुण्वि सावगो समणो । ५

तस्स वु णिब्बुविभत्ती, होवि त्ति जिणेहि पण्णत्तं ॥

॥१०-१-१३४॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (सावगो) श्रावक और (समणो) श्रमण (सम्मत्तणाणचरणे) सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र में (भत्ति) भक्ति (कुण्वि) करता है (तस्स वु) उसके (णिब्बुविभत्ती) निर्वाण भक्ति (होवि) होती है (त्ति) ऐसा (जिणेहि) जिनेन्द्र देव ने (पण्णत्तं) कहा है ।

अर्थ—जो श्रावक और श्रमण (मुनि) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में भक्ति करता है, उसके निर्वाण-भक्ति होती है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है ।

सिद्धों की भक्ति व्यवहार निर्वाण-भक्ति है

गाथा—मोक्षगंगपुरिसाणं, गुणभेदं जाणिव्वुज तेसिपि । ॐ
जो कुणदि परमभत्ति, व्यवहारणयेण परिकहिदं ॥

॥१०-२-१३५॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (मोक्षगंगपुरिसाणं) मोक्ष में गये हुए पुरुषों का (गुणभेदं) गुणभेद (जाणिव्वुज) जानकर (तेसि पि) उनकी (परमभत्ति) परम भक्ति (कुणदि) करता है—उसको (व्यवहारणयेण) व्यवहार नय से (परिकहिदं) (निर्वाणभक्ति) कहा है ।

अर्थ—जो मोक्ष में गये हुए जीवों का गुण भेद जानकर उनकी परम भक्ति करता है, उसको व्यवहार नय से (निर्वाणभक्ति) कहा है ।

निज परमात्म-भक्ति का स्वरूप

गाथा— मोक्षपहे अप्पाणं, ठबिन्न य कुणहि जिम्बुदी भत्ती ।

तेज वु जीवो पावदि, असहायगुणं जियप्पाणं ॥

॥१०-३-१३६॥

अन्वयार्थ—(मोक्षपहे) मोक्ष-मार्ग मे (अप्पाणं) आत्मा को (ठबिन्न य) स्थापित करके (जिम्बुदी भत्ती) निर्वाण-भक्ति (कुणहि) करता है (तेज वु) उससे (जीवो) जीव (असहायगुणं) असहाय गुण वाले (जियप्पाणं) निजात्मा को (पावदि) प्राप्त करता है ।

अर्थ - मोक्ष-मार्ग मे आत्मा को स्थापित करके जो निर्वाण-भक्ति करता है, उससे जीव असहाय गुण वाले निजात्मा को प्राप्त करता है ।

निश्चय योग-भक्ति का स्वरूप

गाहा—रायादीपरिहारे, अप्पाणं जो बु जुञ्जवे साह ।

सो जोगभसिजुत्तो, इबरस्स य किह हवे जोगो ॥

॥१०-४-१३७॥

अन्वयार्थ—(जो बु साह) जो साधु (अप्पाणं) आत्मा को (राया-दीपरिहारे) रागादि के परिहार में (जुञ्जवे) लगाता है (सो) वह (जोगभसिजुत्तो) योग-भक्ति से युक्त है (इबरस्स य) अन्य को (जोगो) योग (किह) किस प्रकार (हवे) हो सकता है ।

अर्थ—जो साधु आत्मा को रागादि के परिहार (त्याग) में लगाता है, वह योग-भक्ति से युक्त है । अन्य को योग किस प्रकार हो सकता है ।

निर्विकल्प भाव निश्चय योग—भक्ति है

गाहा—सर्ववियप्ताभावे, अप्पाणं जो बु बुञ्जवे साह ।

सो जोगभस्तिजुसो, इबरस्स य किह हवे जोगो ॥

कह

॥१०-५-१३८॥

अन्वयार्थ—(जो बु) जो (साह) साधु (अप्पाणं) आत्मा को (सर्व-वियप्ताभावे) समस्त विकल्पों के अभाव में (बुञ्जवे) लगाता है (सो) वह (जोगभस्तिजुसो) योग—भक्ति से युक्त है (इबरस्स य) अन्य को (जोगो) योग (किह) किस प्रकार (हवे) हो सकता है ।

अर्थ—जो साधु आत्मा को समस्त विकल्पों के अभाव में लगाता है, वह योग—भक्ति से युक्त है । अन्य को योग किस प्रकार हो सकता है ।

निश्चय परम योग का स्वरूप

गाहा—बिचरीदाभिनिवेशं, परिचत्ता जेण्हकहिबतच्चेसु ।

जो जुञ्जदि अप्पाणं, गियभावो सो हवे जोगो ॥

॥१०-६-१३६॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (बिचरीदाभिनिवेशं) विपरीत अभिनिवेश का (परिचत्ता) परित्याग करके (जेण्हकहिबतच्चेसु) जैन कथित तत्त्वो मे (अप्पाणं) आत्मा को (जुञ्जदि) लगाता है—उसका (सो गिय-भावो) वह निजभाव (जोगो) योग (हवे) होता है ।

अर्थ—जो विपरीत अभिनिवेश का परित्याग करके जैन (गण-धर देव द्वारा) कथित तत्त्वो मे आत्मा को लगाता है, उसका वह निजभाव योग होता है ।

परम भक्ति अधिकार का उपसंहार ॐ

गाथा—उसहाबिजिणबरीबा, एवं कावुण जोगवरभत्ति ।

णिब्बुविसुहमावण्णा, तम्हा घर जोगवरभत्ति ॥१०-७-१४०॥

अन्वयार्थ—(उसहाबिजिणबरीबा) ऋषभ आदि जिनेन्द्रदेव (एवं) इस प्रकार (जोगवरभत्ति) उत्तम योग-भक्ति (कावुण) करके (णिब्बुविसुहं) निर्वाण-सुख को (आवण्णा) प्राप्त हुए (तम्हा) इसलिये (जोगवरभत्ति) उत्तम योग-भक्ति को (घर) धारण करो ।

अर्थ—ऋषभ आदि जिनेन्द्रदेव इस प्रकार उत्तम योग-भक्ति करके निर्वाण-सुख को प्राप्त हुए । इसलिये (तुम) उत्तम योग-भक्ति को धारण करो ।

कुसह ज्ये नही ६. ३

इदि परमभनि अधियारो दसमो सुदक्षंधो समप्तो

णिच्छय परमावस्सयाधियारो

स्ववश निश्चयावश्यक कर्म है

गाहा—जो ण हवदि अण्णवसो, तस्स दु कम्मं भणंति आवासं ।

कम्मविणासणजोगो, णिब्बुदिमग्गो त्ति णिज्जुत्ती ॥

॥११-१-१४१॥

अन्वयायं—(जो) जो (अण्णवसो) अन्य के वश (ण) नहीं (हवदि) होता है (तस्स दु) उसे (आवासं कम्मं) आवश्यक कर्म (भणंति) कहते हैं (कम्मविणासणजोगो) कर्मों का विनाश करने वाला योग (णिब्बुदिमग्गो) निर्वाण का मार्ग है (त्ति) ऐसी (णिज्जुत्ती) व्युत्पत्ति है ।

अर्थ—जो अन्य के वश नहीं होता है, उसे आवश्यक कर्म कहते हैं । कर्मों का विनाश करने वाला योग निर्वाण का मार्ग है, ऐसी व्युत्पत्ति है ।

अवश का कर्म आवश्यक है

गाहा—ण वसो अवसो अवसस्स कम्म वावस्सयं ति बोधव्वं ।

जुत्ति ति उवाअं ति य, निरवयवो होदि जिञ्जुत्ती ॥

॥११-२-१४२॥

अन्वयार्थ— (ण वसो) जो अन्य के वश नहीं है, वह (अवसो) अवश है (वा) तथा (अवसस्स) अवश का (कम्म) कर्म (आवस्सयं) आवश्यक है (ति) ऐसा (बोधव्वं) जानना चाहिये (ति) यह (जुत्ति) युक्ति है (ति) यह (उवाअं य) उपाय है (निरवयवो) निरवयव-अशरीरी (होदि) होता है—ऐसी (जिञ्जुत्ती) निरुक्ति-व्युत्पत्ति है ।

अर्थ— जो अन्य के वश नहीं है, वह अवश है तथा अवश का कर्म आवश्यक है, ऐसा जानना चाहिये । यह युक्ति और उपाय है, जिससे निरवयव (अशरीरी) होता है । ऐसी निरुक्ति (व्युत्पत्ति) है ।

वा—अथवा, तथा, निश्चय, अवधारण—पा०स०म०, पृ० ७५४.

अशुभ भाव वाले को आवश्यक कर्म नहीं होता

गाहा— वट्टवि जो सो समणो, अण्णवसो होवि असुहभावेण ।

तम्हा तस्स बु कम्मं, आवस्सयलक्खणं ण हवे ॥

॥११-३-१४३॥

अन्वयार्थ— (जो) जो (समणो) श्रमण (असुहभावेण) अशुभ भाव सहित (वट्टवि) वर्तता है (सो) वह (अण्णवसो) अन्य के वश (होवि) है (तम्हा) इसलिए (तस्स बु) उसको (आवस्सयलक्खणं) आवश्यक लक्षण वाला (कम्मं) कर्म (ण हवे) नहीं होता ।

अर्थ— जो श्रमण (मुनि) अशुभ भाव सहित वर्तता है, वह अन्य के वश है । इसलिये उसको आवश्यक लक्षण वाला कर्म नहीं है ।

शुभ भाव वाले को आवश्यक कर्म नहीं होता

गाथा—जो चरवि संजबो खलु, सुहभावे सो हवेदि अण्णवसो । ५
तम्हा तस्स वु कम्मं, आवस्सयलक्खणं ण हवे ॥

॥११-४-१४४॥

अन्वयार्थ—(जो संजबो) जो संयत (सुहभावे) शुभ भाव में (चरवि) वर्तता है (सो) वह (खलु) वस्तुतः (अण्णवसो) अन्य के वश (हवेदि) है (तम्हा) इसलिये (तस्सवु) उसको (आवस्सयलक्खणं) आवश्यक लक्षण वाला (कम्मं) कर्म (ण हवे) नहीं है ।

अर्थ—जो संयत (मुनि) शुभ भाव में वर्तता है, वह वस्तुतः अन्य के वश है । इसलिये उसको आवश्यक लक्षण वाला कर्म नहीं है ।

गाहा - द्रव्यगुणपञ्चयाणं, चित्तं जो कुणदि सो वि अण्णवसो ।

मोहांधयारववगवसमणा कहयंति एरिसयं ॥

॥११-५-१४५॥

अन्वयार्थ - (जो) जो (द्रव्यगुणपञ्चयाणं) द्रव्य, गुण पर्यायों में (चित्तं) मन (कुणदि) लगाता है (सो वि) वह भी (अण्णवसो) अन्य के वश में है (एरिसयं) ऐसा (मोहांधयारववगवसमणा) मोहांधकार से रहित श्रमण (कहयंति) कहते हैं ।

अर्थ - जो द्रव्य, गुण, पर्यायो में मन लगाता है, वह भी अन्य के वश में है, ऐसा मोहांधकार से रहित श्रमण कहते हैं ।

धुंदात्मस्वरूप का ध्याता स्ववश है

गाथा—परिचिता परभावं, अप्पाणं भावि निम्मलसहावं ।

अप्पवसो सो होवि णु, तस्स वु कम्म भणंति आवासं ॥

॥११-६-१४६॥

अन्वयार्थ—जो (परभावं) परभाव को (परिचिता) छोड़कर (निम्मलसहावं) निर्मल स्वभाव वाले (अप्पाणं) आत्मा को (भावि) ध्याता है (सो) वह (णु) वास्तव में (अप्पवसो) आत्मवश (होवि) है (वु) और (तस्स) उसका (आवासं) आवश्यक (कम्म) कर्म—होता है, ऐसा (भणंति) कहते हैं ।

अर्थ—(जो) परभाव को छोड़कर निर्मल स्वभाव वाले आत्मा को ध्याता है, वह वास्तव में आत्मवश है और उसका आवश्यक कर्म होता है, ऐसा (जिनेन्द्र) कहते हैं ।

निश्चयावश्यक की प्राप्ति का उपाय

गाहा—आवासं जवि इच्छसि, अप्सहावेसु कुणवि धिरभावं ।

तेण दु सामण्णगुणं, संपुण्णं होवि जीवस्स ॥

॥११-७-१४७॥

अन्वयार्थ—(जवि) यदि तू (आवासं) आवश्यक को (इच्छसि) चाहता है—तो तू (अप्सहावेसु) आत्म स्वभावों में (धिरभावं) स्थिर भाव (कुणवि) करता है (तेण दु) उससे (जीवस्स) जीव का (सामण्णगुणं) सामायिक गुण (संपुण्णं) सम्पूर्ण (होवि) होता है ।

अर्थ—यदि तू आवश्यक को चाहता है तो तू आत्म स्वभावों में स्थिर भाव करता है । उससे जीव का सामायिक गुण सम्पूर्ण होता है ।

आवश्यक से हीन श्रमण चारित्र्य से भ्रष्ट है

गाहा—आवासएण हीणो, पग्गट्ठो होवि चरणवो समणो ।

पुण्वुत्तकमेण पुणो, तम्हा आवासयं कुञ्जा ॥

॥११-८-१४८॥

अन्वयार्थ—(आवासएण) आवश्यक से (हीणो) होन (समणो) श्रमण (चरणवो) चारित्र्य से (पग्गट्ठो) भ्रष्ट (होवि) होता है (तम्हा) इसलिये (पुणो) पुनः (पुण्वुत्तकमेण) पूर्वोक्त क्रम से (आवासयं) आवश्यक (कुञ्जा) करना चाहिये ।

अर्थ—आवश्यक से हीन श्रमण चारित्र्य से भ्रष्ट होता है । इसलिये पुनः पूर्वोक्त क्रम से आवश्यक करना चाहिये ।

आवश्यक से युक्त श्रमण अन्तरात्मा है

गाहा—आवासएण जुसो, समणो सो होवि अंतरंगप्पा ।

आवासयपरिहीणो, समणो सो होवि बहिरप्पा ॥

॥११-६-१४६॥

अन्वयार्थ- (आवासएण) आवश्यक से (जुसो) युक्त (समणो) श्रमण (सो) वह (अंतरंगप्पा) अन्तरात्मा (होवि) होता है (आवासय-परिहीणो) आवश्यक से रहित (समणो) श्रमण (सो) वह (बहिरप्पा) बहिरात्मा (होवि) होता है ।

अर्थ - आवश्यक से युक्त श्रमण—वह अन्तरात्मा होता है ।
आवश्यक से रहित श्रमण—वह बहिरात्मा होता है ।

अन्तः बाह्य जल्पो मे रहित अन्तरात्मा होता है

गाथा—अंतरबाहिरज्ज्ये, जो बट्टि सो हवेदि बहिरप्पा । ५ ५
जप्पेसु जो न बट्टि, सो बुच्छदि अंतरंगप्पा ॥ ३ ३
॥११-१०-१५०॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (अंतरबाहिरज्ज्ये) अन्तः और बाह्य जल्प मे (बट्टि) वर्तता है (सो) वह (बहिरप्पा) बहिरात्मा (हवेदि) है (जो) जो (जप्पेसु) अन्तः, बाह्य जल्पो मे (न) नहीं (बट्टि) वर्तता (सो) वह (अंतरंगप्पा) अन्तरात्मा (बुच्छदि) कहलाता है ।

अर्थ - जो अन्तः बाह्य जल्पो मे वर्तता है, वह बहिरात्मा है ।
जो अन्तः बाह्य जल्पो मे नहीं वर्तता, वह अन्तरात्मा कहलाता है ।

धर्म-शुक्ल ध्यान मे परिणत अन्तरात्मा है

गाथा—जो धम्मसुक्कभाणम्हि परिणवो सो वि अंतरंगप्पा ।

भाणविहीणो समणो, बहिरप्पा इदि विजाणीहि ॥

॥११-११-१५१॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (धम्मसुक्कभाणम्हि) धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान में (परिणवो) परिणत है (सो वि) वह भी (अंतरंगप्पा) अन्तरात्मा है (भाणविहीणो) ध्यान से रहित (समणो) श्रमण (बहिरप्पा) बहिरात्मा है (इदि) यह (विजाणीहि) जानो ।

अर्थ—जो धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान मे परिणत है, वह भी अन्तरात्मा है । ध्यान से रहित श्रमण बहिरात्मा है, यह जानो ।

वीतराग चारित्र की प्राप्ति का उपाय

गाहा—पङ्क्तिमणपट्टविकिरियं, कुम्भंतो निष्कृयस्स चारित्तं ।

तेण बु विराग चरिदे, समणो अब्भुट्ठिबो होवि ॥

॥११-१२-१५२॥

अन्वयार्थ—(पङ्क्तिमणपट्टविकिरियं) प्रतिक्रमणादि क्रिया को (कुम्भंतो) करता हुआ (समणो) श्रमण (निष्कृयस्सचारित्तं) निश्चय चारित्र को प्राप्त होता है (तेण बु) उससे—वह (विराग-चरिदे) वीतराग चारित्र में (अब्भुट्ठिबो) आरूढ (होवि) होता है ।

अर्थ—प्रतिक्रमणादि क्रिया को करता हुआ श्रमण निश्चय चारित्र को प्राप्त होता है । उससे वह वीतराग चारित्र में आरूढ होता है ।

आवश्यक क्रिया का वचन-व्यापार स्वाध्याय है

गाहा—वयणमयं पडिकमणं, वयणमयं पञ्चक्खाण नियमं च ।

आलोयण वयणमयं, तं सव्वं जाण सज्झाडं ॥

॥११-१३-१५३॥

अन्वयार्थ— (वयणमयं पडिकमणं) वचनात्मक प्रतिक्रमण
(वयणमयं पञ्चक्खाण नियमं च) वचनात्मक प्रत्याख्यान और नियम
(वयणमयं आलोयण) वचनात्मक आलोचना (तं) उस (सव्वं)
सबको—तू (सज्झाडं) स्वाध्याय (जाण) जान ।

अर्थ—वचनात्मक प्रतिक्रमण, वचनात्मक प्रत्याख्यान और
नियम, वचनात्मक आलोचना—उस सबको तू स्वाध्याय जान ।

ध्यानमय प्रतिक्रमण उपादेय है

गाथा—जबि सबकबि काबुं जे, पडिक्रमणादि करेँज्ज भाणमयं ।

सत्तिविहीणो जा जबि, सहहणं चेव कावणं ॥ ३५

॥११-१४-१५४॥

अन्वयार्थ—(जबि) यदि- तू (जे) वास्तव मे (काबुं सबकबि) कर सकता है तो (भाणमयं) ध्यानमय (पडिक्रमणादि) प्रतिक्रमणादि (करेँज्ज) करना चाहिये (जबि) यदि (सत्तिविहीणो) असमर्थ है (जा) तब तक (सहहणं चेव) श्रद्धान ही (कावणं) करना चाहिये ।

अर्थ—यदि तू वास्तव मे कर सकता है तो ध्यानमय प्रतिक्रमणादि करना चाहिये । यदि शक्तिविहीन (असमर्थ) है, तब तक श्रद्धान ही करना चाहिये ।

—जे—पादपूर्ति या अवधारण में प्रयुक्त होने वाला अव्यय

—पा०स०म०, पृ० ३६१

योगी को मौनव्रत का उपदेश

गाथा—जिणकहिदपरमसुत्ते, पडिकमणादिय परीक्खदूण फुडं ।

मोणब्बदेण जोई, णियकज्जं साहए णिच्चं ॥


॥११-१५-१५५॥

अन्वयार्थ—(जिणकहिदपरमसुत्ते) जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित परम-सूत्र से (पडिकमणादिय) प्रतिक्रमणादि की (फुडं) स्पष्ट-भली प्रकार (परीक्खदूण) परीक्षा करके (जोई) योगी को (मोणब्बदेण) मौनव्रत धारण करके (णियकज्जं) अपना कार्य (णिच्चं) सदा (साहए) साधना चाहिये ।

अर्थ—जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित परमसूत्र से प्रतिक्रमणादि की भली प्रकार परीक्षा करके योगी को मौनव्रत धारण करके अपना कार्य सदा साधना चाहिये ।

विवाद के परित्याग का उपदेश

गाथा—जाणा जीबा जाणा कम्मं जाणाविहं हवे लखी ।

तम्हा वयणविवाद, सगपरसमएहि वज्जेँ उज्जो ॥ 

॥११-१६-१५६॥

अन्वयार्थ—(जाणा जीबा) जीव नाना प्रकार के है (जाणा कम्मं) कर्म नाना प्रकार के हैं (सखी) लब्धियाँ (जाणाविहं) नाना प्रकार की (हवे) हैं (तम्हा) इसलिये (सगपरसमएहि) सार्धर्मियों और परधर्मियों के साथ (वयणविवाद) वचन-विवाद (वज्जेँ उज्जो) छोड़ देना चाहिये ।

अर्थ—जीव नाना प्रकार के है, कर्म नाना प्रकार के हैं और लब्धियाँ नाना प्रकार की है । इसलिये सार्धर्मियों और परधर्मियों के साथ वचन-विवाद छोड़ देना चाहिये ।

ज्ञानी द्वारा ज्ञाननिधि का भोग

गाहा—लक्ष्मं जिहि एँक्को, तस्स फलं अणुहवेदि सुजणस्से । ५
तह णाणी णाणणिहि, भुञ्जेदि चइत्तु परतस्ति ॥
॥११-१७-१५७॥

अन्वयार्थ—(एँक्को) जैसे कोई व्यक्ति (जिहि) निधि को (लक्ष्मं) प्राप्त करके (तस्स) उस निधि का (फलं) फल (सुजणस्से) अपने देश में -एकान्त में (अणुहवेदि) अनुभव करता है—भोगता है (तह) उसी प्रकार (णाणी) ज्ञानी (परतस्ति) पर की चिन्ता (चइत्तु) छोड़कर (णाणणिहि) ज्ञाननिधि को (भुञ्जेदि) भोगता है ।

अर्थ—जैसे कोई व्यक्ति निधि को प्राप्त करके उस निधि का फल अपने देश में (एकान्त में) अनुभव करता है (भोगता है), उसी प्रकार ज्ञानी पर की चिन्ता छोड़कर ज्ञाननिधि को भोगता है ।

तस्ति—चिन्ता, विचार, वार्ता, कार्य, प्रयोजन

—पा०स०म०, पृ० ४२७

परमावश्यकधिकार का उपसंहार

गाथा—सखे पुराणपुरिता, एवं आवासयं य कावूष । ॐ

अपमत्तपट्टविठाणं, पडिबज्ज य केवली जावा ॥

॥११-१८-१५८॥

अन्वयार्थ—(सखे) समस्त (पुराणपुरिता) पुराण पुरुष (एवं)
इस प्रकार (आवासयं य) आवश्यक को (कावूष) करके (य) और
(अपमत्तपट्टविठाणं) अप्रमत्तादि गुणस्थानो को (पडिबज्ज) प्राप्त
करके (केवली) केवली (जावा) हो गये ।

अर्थ—समस्त पुराण पुरुष इस प्रकार आवश्यक को करके
और अप्रमत्तादि गुणस्थानो को प्राप्त करके केवली हो गये ।

इदि णिण्ठय परमावस्सयाधियारो ऐक्कारसमोसुदसंधो समत्तो

सुद्धोवन्नोगाधियारो

नयविवक्षा से केवलज्ञानी का स्व-पर प्रकाशकत्व

गाहा—जाणदि पस्सदि सब्बं, व्यवहारणयेण केवली भगवं ।

केवलज्ञानी जाणदि, पस्सदि नियमेण अप्पाणं ॥

॥१२-१-१५६॥

अन्वयार्थ—(व्यवहारणयेण) व्यवहार नय से (केवली भगवं) केवली भगवान (सब्बं) सबको (जाणदि) जानते है—और (पस्सदि) देखते है (नियमेण) निश्चय से (केवलज्ञानी) केवल-ज्ञानी (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (जाणदि) जानते है—और (पस्सदि) देखते है ।

अर्थ—व्यवहार नय से केवली भगवान सबको जानते और देखते है । निश्चय नय से केवलज्ञानी अपनी आत्मा को जानते और देखते है ।

केवलज्ञानी के ज्ञान और दर्शन का युगपत् प्रवर्तन

ॐ गाहा—जुगबं बट्टि जाणं, केवलजाणिस्स बंसणं च तथा ।

जे विणयरपयासताबं, जह बट्टि तह मुणेवणं ॥

॥१२-२-१६०॥

अन्वयार्थ—(केवलजाणिस्स) केवलज्ञानी के (जाणं) ज्ञान (तथा च) तथा (बंसणं) दर्शन (जुगबं) युगपत् (बट्टि) होते हैं (जह) जिस प्रकार (विणयरपयासताबं) सूर्य का प्रकाश और ताप—युगपत् (बट्टि) वर्तते हैं (तह) उसी प्रकार (मुणेवणं) जानना चाहिये ।

अर्थ—केवलज्ञानी के ज्ञान तथा दर्शन युगपत् होते हैं । जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश और ताप (युगपत्) वर्तते हैं, उसी प्रकार जानना चाहिये ।

एकान्त से न ज्ञान परप्रकाशक है, न दर्शन स्वप्रकाशक है

गाहा--जाणं परप्पयासं, बिट्ठी अप्पयासया खेव ।

अप्पा सपरपयासो, होवि त्ति हि मण्णसे जवि हि ॥

॥१२-३-१६१॥

अन्वयार्थ—(जाणं) ज्ञान (परप्पयासं) परप्रकाशक है (खेव) और (बिट्ठी) दर्शन (अप्पयासया एव) आत्म प्रकाशक ही है—अतः (अप्पा) आत्मा (सपरपयासो) स्व-पर प्रकाशक (होवि) है (त्ति हि) ऐसा (जवि हि) यदि—तू (मण्णसे) मानता है (तो ठीक नहीं है) ।

अर्थ—ज्ञान परप्रकाशक है, दर्शन आत्म प्रकाशक है, अतः आत्मा स्व-परप्रकाशक है—यदि तू ऐसा मानता है (तो ठीक नहीं है) ।

एकान्त से ज्ञान को परप्रकाशक मानने पर आपत्ति का प्रसंग

गाथा—**ज्ञानं परप्ययासं, तद्वया ज्ञानेन वंसर्गं भिन्नं ।**

न ह्यबहि परद्रव्यगतं, वंसर्गमिदं वणिग्वं तम्हा ॥

॥१२-४-१६२॥

अन्वयार्थ—यदि (ज्ञानं) ज्ञान (परप्ययासं) केवल परप्रकाशक ही हो (तद्वया) तब तो (ज्ञानेन) ज्ञान से (वंसर्गं) दर्शन (भिन्नं) भिन्न—सिद्ध होगा (तम्हा) क्योंकि (वंसर्गं) दर्शन (परद्रव्यगतं) परद्रव्यगत—परप्रकाशक (न ह्यबहि) नहीं है (इति) ऐसा-पहले (वणिग्वं) वर्णन किया गया है—कहा गया है ।

अर्थ—(यदि) ज्ञान (केवल) परप्रकाशक ही हो, तब तो ज्ञान से दर्शन भिन्न सिद्ध होगा, क्योंकि दर्शन परप्रकाश नहीं है, ऐसा पहले (पूर्व गाथा में) कहा गया है ।

एकान्त से आत्मा को परप्रकाशक मानने पर आपत्ति का प्रसंग

गाथा—अप्पा परप्पयासो,] तइया अप्पेण बंसणं भिण्णं ।

ण हवदि परबब्बगदं, बंसणमिदि बब्बिण्णं तम्हा ॥

॥१२-५-१६३॥

अन्वयार्थ—यदि (अप्पा) आत्मा (परप्पयासो) केवल पर-
प्रकाशक हो (तइया) तब तो (अप्पेण) आत्मा से (बंसणं) दर्शन
(भिण्णं) भिन्न सिद्ध होगा (तम्हा) क्योंकि (बंसणं) दर्शन (पर-
बब्बगदं) परद्रव्यगत—पर प्रकाशक (ण हवदि) नहीं है (इदि)
ऐसा—पहले (बब्बिण्णं) वर्णन किया गया है—कहा गया है ।

अर्थ—(यदि) आत्मा (केवल) पर प्रकाशक ही हो, तब तो
आत्मा से दर्शन भिन्न सिद्ध होगा, क्योंकि दर्शन पर प्रकाशक नहीं
है, ऐसा (पहले) कहा गया है ।

व्यवहार नय से ज्ञान, दर्शन पर प्रकाशक है

उम्माहा—आर्षं परप्पयासं, व्यवहारणयेण वंसणं तम्हा ।

अप्पा परप्पयासो, व्यवहारणयेण वंसणं तम्हा ॥

॥१२-६-१६४॥

अन्वयार्थ—(व्यवहारणयेण) व्यवहार नय से (आर्षं) ज्ञान (परप्पयासं) पर प्रकाशक है (तम्हा) इसलिये (वंसणं) दर्शन-पर प्रकाशक है (व्यवहारणयेण) व्यवहार नय से (अप्पा) आत्मा (परप्पयासो) पर प्रकाशक है (तम्हा) इसलिये (वंसणं) दर्शन पर प्रकाशक है ।

अर्थ—व्यवहार नय से ज्ञान पर प्रकाशक है, इसलिये दर्शन पर प्रकाशक है । व्यवहार नय से आत्मा पर प्रकाशक है, इसलिये दर्शन पर प्रकाशक है ।

निश्चयनय से ज्ञान, दर्शन स्व प्रकाशक हैं

उम्माहा—णाणं अप्पपयासं, निच्छयणयेण वंसणं तम्हा । ए
अप्पा अप्पपयासो, निच्छयणयेण वंसणं तम्हा ॥ णयए
॥१२-७-१६५॥

अन्वयार्थ—(णाणं) ज्ञान (निच्छयणयेण) निश्चय नय से (अप्प-पयासं) आत्म प्रकाशक है (तम्हा) इसलिये (वंसणं) दर्शन—आत्म प्रकाशक है (निच्छयणयेण) निश्चय नय से (अप्पा) आत्मा (अप्प-पयासो) आत्म प्रकाशक है (तम्हा) इसलिये (वंसणं) दर्शन—आत्म प्रकाशक है ।

अर्थ—निश्चय नय से ज्ञान आत्म प्रकाशक है, इसलिये दर्शन आत्म प्रकाशक है । निश्चय नय से आत्मा आत्म-प्रकाशक है, इसलिये दर्शन आत्म प्रकाशक है ।

निश्चय नय की अपेक्षा केवली आत्मा को जानते-देखते हैं

गाहा—अप्पसरूबं पेँण्णवि, लोयालोयं न केवली भगवं । १७ ॥ १२-८-१६६ ॥

२५ यदि कोई भण्णि एवं, तस्स य कि बूसणं होदि ॥ २५ ॥
॥ १२-८-१६६ ॥

अन्वयार्थ—(केवली भगवं) केवली भगवान् (अप्पसरूबं) आत्म स्वरूप को (पेँण्णवि) देखते हैं (लोयालोयं न) लोकालोक को नहीं (जवि) यदि (एवं) ऐसा (कोइ) कोई (भण्णि) कहता है (तस्स य) उसका (कि बूसणं) क्या दोष (होदि) है ।

अर्थ—केवली भगवान् आत्म स्वरूप को देखते हैं, लोकालोक को नहीं, यदि कोई ऐसा कहता है, तो उसका क्या दोष है ।

गाहा—मुसममुत्तं ब्रह्मं, चैवणमिदरं सगं च सव्वं च ।

पेच्छंतस्स दु जाणं, पणवस्समणिदियं होदि ॥ ५

यतस्तु)

॥१२-६-१६७॥

अन्वयार्थ—(मुत्तं) मूर्त (अमुत्तं) अमूर्त (चैवणं) चेतन—और (इदरं) अचेतन (ब्रह्मं) द्रव्य को (सगं च) स्व को और (सव्वं च) समस्त को (पेच्छंतस्स दु) देखने-जानने वाले का (जाणं) ज्ञान (पणवस्सं) प्रत्यक्ष—और (अणिदियं) अतीन्द्रिय (होदि) है ।

अर्थ—मूर्त-अमूर्त, चेतन और अचेतन द्रव्य को, स्व को और समस्त को देखने (जानने) वाले का ज्ञान प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय है ।

इन्द्रिय ज्ञान परोक्ष ज्ञान है

गाथा—पुण्युत्तसयलवर्णं, जाजागुणपञ्जएण संखुत्तं ।

८ जो न य पेँ छवि सम्मं, परोक्खविट्ठी हवे तस्स ॥

॥१२-१०-१६८॥

अन्वयार्थ—(जाजागुणपञ्जएण संखुत्तं) नाना गुण और पर्यायों से युक्त (पुण्युत्तसयलवर्णं) पूर्वोक्त समस्त द्रव्यों को (जो) जो (सम्मं) सम्यक् प्रकार (न य पेँ छवि) नहीं देखता (तस्स) उसे (परोक्खविट्ठी) परोक्ष दर्शन (हवे) है ।

अर्थ—नाना गुण और पर्यायों से युक्त पूर्वोक्त समस्त द्रव्यों को जो सम्यक् प्रकार नहीं देखता, उसे परोक्ष दर्शन है ।

व्यवहार नय की अपेक्षा केवली लोकालोक को जानते हैं

गाथा—लोयालोयं जाणवि, अप्पाणं जेव केवली भगवं ।

ॐ ५ अवि कोइ भणवि एवं, तस्स य किं बूसणं होवि ॥ ५
॥१२-११-१६६॥

अन्वयार्थ—(केवली भगवं) केवली भगवान (लोयालोयं) लोकालोक को (जाणवि) जानता है (जेव अप्पाणं) आत्मा को नहीं (अवि) यदि—व्यवहार नय से (कोइ) कोई (एवं) इस प्रकार (भणवि) कहता है—तो (तस्स य) उसका (किं) क्या (बूसणं) दोष (होवि) है ।

अर्थ—केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं, अपनी आत्मा (शुद्धात्मास्वरूप) को नहीं, यदि (व्यवहार नय से) कोई इस प्रकार कहता है तो उसका क्या दोष है ।

ज्ञान जीव का स्वरूप है

साहा—जाणं जीवस्वरूपं, तम्हा जाणेदि अप्पणं अप्पा । ५
अप्पाणं न विजाणदि, अप्पाबो होदि बहिरित्तं ॥

॥१२-१२-१७०॥

अन्वयार्थ—(जाणं) ज्ञान (जीवस्वरूपं) जीव का स्वरूप है (तम्हा) इसलिये (अप्पा) आत्मा (अप्पणं) अपनी आत्मा को (जाणेदि) जानता है—यदि ज्ञान (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (न विजाणदि) नहीं जाने तो—वह (अप्पाबो) आत्मा से (बहिरित्तं) भिन्न (होदि) हो जाय (सिद्ध हो जायगा) ।

अर्थ—ज्ञान जीव का स्वरूप है, इसलिये आत्मा अपनी आत्मा को जानता है । (यदि ज्ञान) अपनी आत्मा को नहीं जाने (तो वह) आत्मा से भिन्न सिद्ध हो जायगा ।

ज्ञान और आत्मा अभिन्न हैं

गाथा—अप्पाणं विणु जाणं, जाणं विणु अप्पगो ण संबेहो ।

तम्हा सपरपयासं, जाणं तह वंसणं होबि ॥ ✓

॥१२-१३-१७१॥

अन्वयार्थ—(अप्पाणं) आत्मा को (जाणं) ज्ञान (विणु) जानो और (जाणं) ज्ञान को (अप्पगो) आत्मा (विणु) जानो (संबेहो ण) इसमें सन्देह नहीं है (तम्हा) इसलिये (जाणं) ज्ञान (तह) तथा (वंसणं) दर्शन (सपरपयासं) स्व पर प्रकाशक (होबि) है ।

अर्थ—आत्मा को ज्ञान जानो और ज्ञान को आत्मा जानो, इसमें सन्देह नहीं है । इसलिये ज्ञान तथा दर्शन स्व पर प्रकाशक है ।

केवली का ज्ञान ईहापूर्वक नहीं होता

गाथा—जाणंतो पस्संतो, ईहापुब्बं ण होवि केवल्लिणो । ३

केवल्लिणाणी तम्हा, तेणं तु सोबंघयो भणिबो ।

॥१२-१४-१७२॥

अन्वयार्थ—(जाणंतो) जानते—और (पस्संतो) देखते हुए (केवल्लिणो) केवली को (ईहापुब्बं) ईहापूर्वक-वर्तन (ण होवि) नहीं होता (तम्हा) इसलिये—वह (केवल्लिणाणी) केवल ज्ञानी कहलाता है (तु) और (तेणं) इसलिये (सो) वह (अबंघयो) अवधक (भणिबो) कहा जाता है ।

अर्थ—जानते और देखते हुए केवली को ईहापूर्वक (वर्तन) नहीं होता । इसलिये वह केवलज्ञानी कहलाता है और इसलिये वह अवधक कहा जाता है ।

केवलज्ञानी अवधक है

गाहा—परिणामपुण्यवयनं, जीवस्स य बंधकारणं होवि । ३
परिणामरहितवयनं, तम्हा जाणिस्स ण हि बंधो ॥

॥१२-१५-१७३॥

अन्वयार्थ—(परिणामपुण्यवयनं) परिणामपूर्वक वचन (जीवस्स य) जीव को (बंधकारणं) बन्ध का कारण (होवि) होता है (जाणिस्स) ज्ञानी के (परिणामरहितवयनं) वचन परिणाम रहित होते हैं (तम्हा) इसलिये—उसे (हि) निश्चय से (बंधो ण) बन्ध नहीं है ।

अर्थ—परिणामपूर्वक वचन जीव को बन्ध का कारण होता है । ज्ञानी के वचन परिणाम रहित होते हैं । इसलिये उसे निश्चय से बन्ध नहीं है ।

केवलज्ञानी के वचन ईहारहित होते हैं

गाहा—ईहापुब्बं वयणं, जीवस्स य बंधकारणं होवि ।

३

च ईहारहिबं वयणं, तम्हा नाणिस्स ण हि बंधो ॥१२-१६-१७४॥

अन्वयार्थ—(ईहापुब्बं वयणं) ईहापूर्वक वचन (जीवस्स य) जीव को (बंधकारणं) बन्ध का कारण (होवि) होता है (नाणिस्स) ज्ञानी के (ईहारहिबं वयणं) वचन ईहारहित होते हैं (तम्हा) इसलिये--उसे (हि) निश्चय से (बंधो ण) बन्ध नहीं है ।

अर्थ—ईहापूर्वक वचन जीव को बन्ध का कारण होता है । ज्ञानी के वचन ईहारहित होते हैं । इसलिये उसे निश्चय से बंध नहीं है ।

केवली की क्रियायें ईहारहित होती हैं

गाहा—ठाणणित्से ञ्जविहारा, ईहापुब्बं ण होदि केवलिणो । ३
तन्हा ण होदि बंधो, साकट्ठं मोहणीयस्स ॥

॥१२-१७-१७५॥

अन्वयार्थ—(केवलिणो) केवली के (ठाणणित्से ञ्जविहारा) खड़े रहना, बैठना, बिहार (ईहापुब्बं) ईहापूर्वक (ण होदि) नहीं होता (मोहणीयस्स) मोहनीय के वश हुए जीव को (साकट्ठं) इन्द्रिय-विषय रूप प्रयोजन के कारण-बन्ध होता है ।

अर्थ—केवली के खड़े रहना, बैठना, बिहार करना ईहापूर्वक नहीं होते । इसलिये उन्हें बन्ध नहीं होता । मोहनीय के वश हुए जीव को इन्द्रिय-विषय रूप प्रयोजन के कारण (बन्ध होता है) ।

कर्म नष्ट होने पर जीव की स्वभावगति

गाहा—आउस्स क्षयेण पुणो, निष्णासो होवि सेसपयडीणं । ३

३ पच्छा पाववि सिग्घं, लोयगं समयमेत्तेण ॥ मे

॥१२-१८-१७६॥

अन्वयार्थ—(पुणो) फिर—केवली को (आउस्स) आयु कर्म के (क्षयेण) क्षय होने से (सेसपयडीणं) शेष कर्म प्रकृतियों का (निष्णासो) सम्पूर्ण नाश (होवि) हो जाता है (पच्छा) पश्चात् (सिग्घं) शीघ्र (समयमेत्तेण) एक समय मात्र में (लोयगं) लोक के अग्र भाग में (पाववि) पहुँच जाते हैं ।

अर्थ— फिर (केवली को) आयु कर्म के क्षय होने से शेष कर्म-प्रकृतियों का सम्पूर्ण नाश हो जाता है । पश्चात् वे शीघ्र एक समय मात्र में लोक के अग्रभाग में पहुँच जाते हैं ।

गाहा—जाद्विजरमरणरहिबं, परमं कम्मट्ठवज्जिबं सुद्धं । च यं
२ पाणाविच्चउसहाबं, अक्खयमविणासमच्छेबं ॥ यं
॥१२-१९-१७७॥

अन्वयार्थ—(जाद्विजरमरणरहिबं) जन्म, जरा, मरण से रहित
(परमं) परम (कम्मट्ठवज्जिबं) अष्ट कर्मों से रहित (सुद्धं) शुद्ध
(पाणाविच्चउसहाबं) ज्ञानादि चार स्वभाव वाला (अक्खयं) अक्षय
(अविणासं) अविनाशी—और (अच्छेबं) अच्छेद्य है ।

अर्थ—(वह परमात्मा) जन्म, जरा, मरण से रहित, परम, अष्ट
कर्मों से रहित, शुद्ध, ज्ञानादि चार स्वभाव वाला, अक्षय, अविनाशी
और अच्छेद्य है ।

परमात्म स्वरूप का कथन

गाहा—अव्यावाहर्माणिवियमजोबमं पुण्यपावनिम्मुक्तं ।
पुनरागमणविरहितं, निष्कलं अचलं अणालंबं ॥

२५

॥१२-२०-१७८॥

अन्वयार्थ—वह परमात्मा (अव्यावाहं) अव्यावाध (अणिवियं)
अतीन्द्रिय (अजोबमं) अनुपम (पुण्यपावनिम्मुक्तं) पुण्य-पाप से
निर्मुक्त (पुनरागमणविरहितं) पुनरागमन से रहित (निष्कलं) नित्य
(अचलं) अचल (अणालंबं) निरालम्ब है ।

अर्थ—(वह परमात्मा) अव्यावाध, अतीन्द्रिय, अनुपम, पुण्य-
पाप से निर्मुक्त, पुनरागमन से रहित, नित्य, अचल और
निरालम्ब है ।

२५

गाहा— ण वि दुक्खं ण वि सुक्खं, ण वि पीडा णेव विज्जहे बाहा ।
 ण वि मरणं ण वि जणणं, तत्थेव य होवि णिव्वाणं ॥

॥१२-२१-१७६॥

अन्वयार्थ—(ण वि दुक्खं) न तो जहाँ दुःख है (ण वि सुक्खं)
 न सुख है (ण वि पीडा) न पीडा है (णेव बाहा विज्जहे) न बाधा
 है (ण वि मरणं) न मरण है (ण वि जणणं) न जन्म है (तत्थेव य)
 वही (णिव्वाणं) निर्वाण (होवि) है ।

अर्थ—(जहाँ) न तो दुःख है, न सुख है, न पीडा है, न बाधा है,
 न मरण है और न जन्म है, वही निर्वाण है ।

निर्वाण होने पर सांसारिक विकारों का अभाव

गाथा—ण वि इंदियउवसग्गा, ण वि मोहो विम्हयो ण निद्रा य ।

ण य तण्हा जेब छुहा, तत्थेव य होवि निब्बानं ॥ ५

॥१२-२२-१८०॥

अन्वयार्थ—जहाँ (ण वि इंदियउवसग्गा) इन्द्रियाँ नहीं, उपसर्ग नहीं (ण वि मोहो) मोह नहीं (ण विम्हयो निद्रा य) विस्मय और निद्रा नहीं (ण य तण्हा) तृषा नहीं (जेब छुहा) क्षुधा नहीं (तत्थेव य) वही (निब्बानं) निर्वाण (होवि) है ।

अर्थ—(जहाँ) इन्द्रियाँ नहीं, उपसर्ग नहीं, मोह नहीं, विस्मय और निद्रा नहीं, तृषा नहीं, क्षुधा नहीं, वही निर्वाण है ।

निर्वाण होने पर ध्यान का ब्रभाव

गाहा—ण वि कम्मं णोकम्मं, ण वि चिंता णेव अट्टरुहाणि ।

ण वि धम्मसुक्कभाणे, तत्थेव य होदि णिव्वाणं ॥

॥१२-२३-१८१॥

अन्वयार्थ—(ण वि कम्मं णोकम्मं) जहाँ न कर्म है, न नोकर्म है (ण वि चिंता) न चिन्ता है (णेव अट्टरुहाणि) न आतं और रौद्र ध्यान है (ण वि धम्मसुक्कभाणे) न धर्म और शुक्ल ध्यान है (तत्थेव य) वही (णिव्वाणं) निर्वाण (होदि) है ।

अर्थ—जहाँ न कर्म है, न नोकर्म है, न चिन्ता है, न आतं और रौद्र ध्यान है, न धर्म और शुक्लध्यान है, वही निर्वाण है ।

सिद्ध भगवान के स्वभाव गुणों का कथन

गाथा—विष्णुवि केवलज्ञानं, केवलसौख्यं च केवलं विरियं ।

केवलविविद्धं अमृतं, अस्थितं सम्प्रवेशितं ॥

॥१२-२४-१८२॥

अन्वयार्थ—वहाँ (केवलज्ञानं) केवलज्ञान (केवलसौख्यं) केवल सौख्य (च) और (केवलं विरियं) केवल वीर्य (केवलविविद्धं) केवल दर्शन (अमृतं) अमूर्तत्व (अस्थितं) अस्तित्व (सम्प्रवेशितं) सप्रदेशत्व रहते हैं ।

अर्थ—वहाँ केवल ज्ञान, केवल सौख्य, केवल वीर्य, केवल दर्शन, अमूर्तत्व, अस्तित्व और सप्रदेशत्व रहते हैं ।

निर्वाण (सिद्धि) बीर सिद्ध का जन्म

गाथा—णिब्बाणमेव सिद्धा, सिद्धा णिब्बाणमिदि समुद्दिता ।

५ कम्मविमुक्को अप्पा, गच्छदि लोयग्गपज्जत्तं ॥

॥१२-२५-१८३॥

अन्वयार्थ-- (णिब्बाणमेव) निर्वाण ही (सिद्धा) सिद्ध है (सिद्धा) सिद्ध ही (णिब्बाणं) निर्वाण है (इदि) ऐसा (समुद्दिता) शास्त्र में कहा है (कम्मविमुक्को) कर्म रहित (अप्पा) आत्मा (लोयग्ग-पज्जत्तं) लोक के अग्रभाग पर्यन्त (गच्छदि) जाता है ।

अर्थ—निर्वाण ही सिद्ध है, सिद्ध ही निर्वाण है, ऐसा शास्त्र में कहा है । कर्मरहित आत्मा लोक के अग्रभाग पर्यन्त जाता है ।

लोकान्न से आने जीव और पुद्गल के गमन का निषेध

गाहा—जीवाण्य योऽन्मस्तत्त्वं, गमनं जायेहि जाय धम्मत्थी ।

धम्मस्त्थिकायभावे, तत्तो परबो ण गच्छंति ॥

॥१२-२६-१८४॥

अन्वयार्थ—(जाय) जहाँ तक (धम्मत्थी) धर्मास्तिकाय है—
वहाँ तब (जीवाण्य योऽन्मस्तत्त्वं) जीव और पुद्गलों का (गमनं)
गमन (जायेहि) जानो (धम्मस्त्थिकायभावे) धर्मास्तिकाय का
अभाव होने से (तत्तो) उससे (परबो) आगे (ण गच्छंति) वे नहीं
जाते ।

अर्थ— जहाँ तक धर्मास्तिकाय है, वहाँ तक जीव और पुद्गलों
का गमन जानो । धर्मास्तिकाय का अभाव होने में उससे आगे वे
नहीं जाते ।

आचार्य की विनम्रता

गङ्गा—नियमं नियमस्स फलं, णिहिट्ठं पबयणस्स भत्तीए ।

पुब्बावर विरोधो जदि, अवणीय पूरयंतु समयण्हा ॥

॥१२-२७-१८५॥

अन्वयार्थ—(नियमं) नियम और (नियमस्स फलं) नियम का फल (पबयणस्स भत्तीए) प्रवचन-भक्ति से (णिहिट्ठं) मैंने कहे हैं (जदि) यदि (पुब्बावर विरोधो) पूर्वापर विरोध हो तो (सम-यण्हा) आगम के ज्ञाता पुरुष (अवणीय) उसे दूर करके (पूरयंतु) पूर्ति कर ले ।

अर्थ—(मैंने) नियम और नियम का फल प्रवचन-भक्ति से कहे हैं । यदि (उसमें कहीं) पूर्वापर विरोध हो तो आगम के ज्ञाता पुरुष उसे दूर करके पूर्ति कर ले ।

भक्त्यों को शिक्षा

गाथा—ईसाभावेण पुनो, कोई विवर्ति सुंदरं मर्गं ।

तेसि वचनं सोच्छाभसि मा कुणह जिममणे ॥१२-२८-१८६॥

अन्वयार्थ—(पुनो) पुनः (कोई) कई पुरुष (ईसाभावेण) ईर्ष्या-
भाव से (सुंदरं मर्गं) सुन्दर मार्ग की (विवर्ति) निन्दा करते हैं
(तेसि वचनं) उनके वचन (सोच्छा) सुनकर (जिममणे) जिनमार्ग
के प्रति (अभसि) अभक्ति (मा कुणह) मत करो ।

अर्थ—पुनः कई पुरुष ईर्ष्याभाव से सुन्दर मार्ग की निन्दा करते
हैं । उनके वचन सुनकर जिनमार्ग के प्रति अभक्ति मत करो ।

वाच्य का आत्म-निवेदन

गाहा—नियमभावनाभिमितं, मए कइं नियमसारणामसुबं ।

गच्छा जिणोषवेसं, पुठ्ठावरदोसणिम्मुकं ॥

॥१२-२६-१८७॥

अन्वयार्थ—(पुठ्ठावरदोसणिम्मुकं) पूर्वापर दोष रहित (जिणोषवेसं) जिणोपदेश को (गच्छा) जानकर (मए) मैंने (नियम-भावनाभिमितं) निज भावना के निमित्त से (नियमसारणामसुबं) नियमसार नामक शास्त्र (कइं) बनाया है ।

अर्थ—पूर्वापर दोष रहित जिणोपदेश को जानकर मैंने निज भावना के निमित्त से नियमसार नामक शास्त्र बनाया है ।

इदि सुद्धोवओगाधियारो वारसमो सुदल्लंघो समत्तो

परिसिद्ध

गाह्यक्रमणिका

गाथा क्रमांक

अ

अणुखधवियप्पेण दु	२०
अण्णनिरावेक्खो जो	२८
अत्तागमतच्चाण	५
अत्तादि अत्तमज्झं	२६
अदिथूल थूलथूल थूल	२१
अप्पसरू व पे च्छदि	१६६
अप्पसरूवालवण	११६
अप्पाण विणु णाण	१७१
अप्पा परप्पयासो	१६३
अरसमरूवमगघ	४६
अव्वावाहमणिदिय	१७८
असरीरा अविणासा	४८
अंतरबाहिरजप्पे	१५०

आ

आउस्स खयेण पुणो	१७६
आदा खुमज्झगाणे	१००
आरहणाइ वट्टदि	८४
आलोयणमालुछण	१०८
आवासं जदि इच्छसि	१४७
आवासएण जुत्तो	१४६
आवासएण हीणो	१४८

इ

इत्थीराजचोरभत्त	६७
आचार्यं कुन्दकुन्द	१

ई

ईसाभावेण पुणो	१८६
ईहापुव्व वयण	१७४

उ

उक्किट्टो जो वोहो	११६
उत्तम अट्ट आदा	६२
उम्मग्ग परिचत्ता	८६
उमहादि जिणवर्दिदा	१४०

ए

एगरसरूवगध	२७
एगो मे सासदो अप्पा	१०२
एगो य मरदि जीवो	१०१
एदे छट्ठ्वाणि य	३४
एदे सव्वे भावा	४६
एरिसभावणाए	७६
एरिसभेदवभासे	८२
एव भेदवभास	१०६

क

कत्ता भोत्ता आदा	१८
कदकारिदाणुमोदण	६३
कम्ममहीरुहमूल	११०
कम्मादो अप्पाणं	१११
कायकिरिया णियत्ती	७०
कायादी परदव्वे	१२१
कालुस्समोहसण्णा	६६
कि काहदि वणवासो	१२४
किं बहुणा भणिदेण दु	११७
कुलजोणिजीवमग्गण	५६

कवलाणसहायो	६६
केवलमिदिय रहिदं	११
कोहं खमया णाणं	११५
कोहादि सगम्भाव	११४

ग

गमणणिमित्तं धम्म	३०
गामे वा णयरे वा	५८

घ

घणघादिकम्मरहिदा	७१
-----------------	----

च

चउगदिभवसभमण	४२
चउदहभेदा भणिदा	१७
चक्खु अचक्खू ओही	१४
चत्ता हयगुत्तिभावं	८८
चलमलिणमगाढत्त	५२

छ

छायातवमादीया	२३
छुह तण्ह भीरु रोसो	६

ज

ज किंचि मे दुच्चरित्त	१०३
जदि सक्कदि कादुंजे	१५४
जस्स रागो दु दोसो दु	१२८
जस्स सण्णिहिदो अप्पा	१२७
जाणदि पस्सदि सब्बं	१५६
जाणंतो पस्संतो	१७२
जादिजरमरणरहिदं	१७७
जा रायादि णियस्ती	६९

आचार्य कुन्दकुन्द

गाथा क्रमांक

जारिसियासिद्धप्पा	४७
जिणकहिदपरमसुत्ते	१५५
जीवाण पेगगलाण	१८४
जीवादि बहिस्तच्च	३८
जीवादी दव्वाण	३३
जीवादु पेगगलादो	३२
जीवा पेगगलकाया	६
जीवो उवओगमओ	१०
जुगव वट्टदि णाण	१६०
जो चरदि मजदो खलु	१४४
जो ण हवदि अप्पवसो	१४१
जो दु अट्ट च रुद् च	१२६
जो दुगच्छा भय वेद	१३२
जो दु धम्म च सुक्क च	१३३
जो दु पुण्ण च पाव च	१३०
जो दु हस्स रदि मोग	१३१
जो धम्मसुक्कभाणम्हि	१५१
जा पस्सदि अप्पाण	१०६
जो ममो मव्वभूदेसु	१२६

झ

भाणणिलाणो साहू	६३
----------------	----

ठ

ठाणणित्तेज्जबिहार	१७५
-------------------	-----

ण

णट्टट्टकम्मबधा	७२
णमिदूण जिण वीर	१
णरणारयतिरिय सुरा	१५
ण वसो अवसो अवसस्स	१४२
ण वि इदिय उवसग्ग	१८०

गाथा क्रमांक

ण वि कम्म णोकम्म	१८१
ण वि दुक्ख ण वि सुक्ख	१७६
णतानंतभवेण	११८
णाण अप्पपयासं	१६४
णाण जीवमरूव	१७०
णाण परप्पयासं	१६१
णाणं परप्पयास, तइया	१६२
णाण परप्पयासं, ववहारणयेण	१६४
णाणा जीवा णाणा कम्म	१५६
णाह कोहो माणो	८१
णाहं णारयभावो	७७
णाह वालो बुड्ढो	७६
णाह मग्गणठाणो	७८
णाह रागो दोसो	८०
णिककसायस्स दतस्स	१०५
णिग्गथो णीरागो	४४
णिद् डो णिद् दो	४३
णियभावणाणिमित्त	१८७
णियभाव ण वि मुञ्चदि	६७
णियम णियमस्स फल	१८५
णियम मेक्खउवायो	४
णियमेण य ज कज्ज	३
णिब्बाणमेव सिद्धा	१८३
णिस्सेस दोसरहिदो	७
णो कम्मकम्मरहिद	१०७
णो खइयभावठाणा	४१
णो खलु सहावठाणा	३६
णो ठिदिबंघट्टाणा	४०

त

तस्स मुहग्गदक्खणं ८

आचार्यं कुन्दकुन्द ५

तह दसण उवओगो

१३

इ

दट्टू ण इत्थिरूव

५६

दव्वगुण पज्जयाणं

१४५

दव्वत्थिएण जीवा

१६

ध

घादु चदुक्कस्स पुणो

२५

प

पडिकमण णामधेये

६४

पडिकमण पट्टदि किरियं

१५२

पयडिट्ठिदि अणुभाग

६८

परिचत्ता परभावं

१४६

परिणाम पुव्ववयणं

१७३

पंचाचार समग्गा

७३

पुत्थय कमडलादि

६४

पुव्वुत्तसयल दव्वं

१६८

पुव्वुत्तसयलभावा

५०

पेसुण्णहास कक्कस

६२

पौगलदव्व मुत्त

३७

पौगलदव्व बुच्चदि

२६

फ

फासुगभूमिपदेसे

६५

फासुगमग्गेण दिवा

६१

ब

बंधणछेदणमारण

६८

भ

भूपव्वदमादीया

२२

म

मग्गो मग्गफलं ति य	२
मदभाणमायलोह	११२
ममत्ति परिवज्जामि	६६
माणुस्सा दुवियप्पा	१६
मिच्छत्त पट्टदिभावा	६०
मिच्छादसणणाण	६१
मुत्तममुत्तं दब्बं	१६७
मोक्खपहे अप्पाणं	१३६
मोक्खगद पुरिसाणं	१३५
मोत्तूण अट्टरुह	८६
मोत्तूण अणायारं	८५
मोत्तूण वयणरयण	८३
मोत्तूण सयलजप्प	६५
मोत्तूण सल्लभावं	८७

र

रयणत्तय सजुत्ता	७४
रागादी परिहरण	१३७
रागेण व दोसेण व	५७

ल

लद्धूण णिघि ऐक्को	१५७
लोयायासे ताव	३६
लोयालोयं जाणदि	१६६

व

वट्टदि जो सो समणो	१४३
वण्णरसगंधफासा	४५
वदसमिदि सीलसंजम	११३
वयणमयं पडिकमणं	१५३
वयणोच्चारणकिरियं	१२२

आचार्य कुन्दकुन्द

गाथा क्रमांक

ववहारणयचरित्ते	५४
वावार विप्पमुक्का	७५
विज्जदि केवलणाण	१८२
विरदो सव्वसावज्जे	१२५
विवरीदाभिणिवेस	५१
विवरीदाभिणिवेस	१३६

स

सण्णाण चउभेय	१२
समयावलिभेदेण दु	३१
सम्मत्त णाण चरणे	१३४
सम्मत्तस्स णिमित्त	५३
सम्मत्त सण्णाण	५४
सम्म मे सव्वभूदेसु	१०४
सव्ववियप्पाभावे	१३८
सव्वे पुराण पुरिसा	१५८
सव्वेसि गथाण	६०
सखेज्जासखेज्जा	३५
सजमणियमतवेण दु	१२३
सुहअसुहवयणरयण	१२०
मुहुमा हवति खधा	२४

